प्राप्त प्राप्त

श्रीवर्द्धमानाय नमः।

भाग १३। अंक १२।

जैनहितैषी।

दिसम्बर १९१७।

विषय-सूची।

१ प्रभातोदय (कविता)। ले० पं० रामचरित उपाध्याय ... ५१५
२ कल्कि अवतारकी ऐतिहासिकता (अनुवाद)। ... ५१६
३ गुप्तराजाओंका काल, मिहिरकुल और कल्कि। ... ५२२
४ लोकविभाग और त्रिलोकप्रज्ञप्ति। ५२५
५ बाबाजीका स्वप्न (कविता)। ले० बाबू ठाकुरदास जैन ... ५३५
६ श्वेताम्बर-ग्रन्थोंमें कल्किका वर्णन। ले० मुनिजिनविजयजी ५३५
७ स्वराज्य-सोपान (कविता)। ले० पं० रामचरित उपाध्याय ५३९
८ द्रव्यसंग्रह (समालोचना)। ले०, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ५४१
९ विचित्र ब्याह (काव्य)। ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ... ५५०
१० जैनधर्मकी भूगोल और खगोल। ले० श्रीयुत जिज्ञासु ५५४
११ पुस्तक-परिचय ५५९

नई जैन पुस्तकें।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग मूल्य ।), द्वितीयभाग मू० ।=), दर्शनसार विवेचनासहित मू० ।-), मोक्षमार्गकी कहानियाँ मू० ।≈), बच्चोंके सुधारनेके उपाय मू० ।।), सन्तानपालन -)।।, सर्वार्थसिद्धि मूल संस्कृत २), बुधजनसतसई ।=), आचारसार (आचार्य वीरनन्दिकृत) माणिकचन्द जैनग्रन्थमालाका ग्यारहवाँ ग्रन्थ, मूल्य० ।=)

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

संपादक—नाथूराम प्रेमी।

मुंबईवैभव प्रेस.

प्रार्थनायें।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

भारतविख्यात! हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त!

अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया। डा० म० ॥) आना।

वैद्य।

सर्वोपयोगी मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्य-रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर

आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय, मुरादाबाद।

आढ़तका काम।

बंबईसे हरकिस्मका माल मँगानेका सुभीता

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबे व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मन-सिलवर और अलूमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरीका सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी, स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रका का देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसवीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दुकानके नामकी मुहरें, कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्त्तकी चिट्ठियाँ (कंकुपत्रिका) आदि, हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा।

हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी अवश्य मँगाइए। बहुत बढ़िया हैं।

पता—**पूरणचंद नन्हेंलाल जैन।**

c/o जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग,
पो० गिरगांव, बम्बई

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग । अंक १२

जैनहितैषी

दिसम्बर १९१७. मार्गशीर्ष २४४४.

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

प्रभातोदय ।

(ले०— पण्डित रामचरित उपाध्याय ।)

(१)

जगो भारत, सुनो बातें, पड़े हो व्यर्थ क्यों बेगम ।
जपो इस मंत्रको मनमें, 'हमारे तुम तुम्हारे हम' ।

(२)

मही निर्गन्ध हो, नभ भी-कभी निःशब्द हो जाये,
तदपि हम तुम रहें हँसते, मिलाये हाथ को हरदम ।

(३)

पढ़ो इतिहास यदि अपने, खुलें तो आपकी आँखें,
तुरत यह ज्ञान सच्चा हो, किसीसे भी न हम थे कम ।

(४)

कभी निःस्वत्व या दुर्बल न समझो आप अपनेको,
अविद्या-ग्रस्त होने से, वृथा कुछ हो गया है भ्रम ।

(५)

करो उद्योग निर्भय हो, निराशा कौन चिड़िया है ?
हम उनके वंशधारी हैं, कि जिनसे काँपता था यम ।

(६)

करोड़ों मिट गये तारे, हवा चलती प्रभाती है,
न सोनेका समय यह है, जगतसे हट चला है तम ।

(प्रतापसे उद्धृत ।)

कल्कि अवतारकी ऐतिहासिकता।

[श्रीयुक्त बाबू काशीप्रसाद जायसवाल बैरिस्टर एट्. ला. के बंगलाभाषामें प्रकाशित हुए लेखका अनुवाद।]

हिन्दुओंके पुराणग्रन्थोंमें कलिकालके बहुतसे राजाओंके राज्यकालका और कार्यकलापोंका भविष्यत्कथनके रूपमें वर्णन मिलता है। इन भविष्यत्के राजाओंके वर्णनमें अजातशत्रु, उदयी, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक आदि इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तियोंके जन्म, कर्म आदिके जिक्रके साथ साथ कल्किके भी कामोंका उल्लेख है। पुराणकारोंने भविष्यराजाओंके वर्णनप्रसङ्गमें अन्ध्रराजाओंके अनन्तर, भारतवर्षके भिन्न भिन्न वंशोंके राजाओंके नामोंके साथ प्रबल और अत्याचारपरायण म्लेच्छ राजाओंका वर्णन किया है और अन्तमें कहा है कि कल्कि इन सब अधर्मी म्लेच्छोंका नाश करेंगेः—

कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः।
अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः॥

—वायुपुराण अ० ३७, श्लोक ३९०।

मत्स्यपुराणमें कहा है कि, वे कल्किके द्वारा मारे गये थेः—

कल्किनानुहताः सर्वे आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः।
अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः॥

—मत्स्य अ० २७२, श्लो० २७।

कल्किके बाद और किसी भविष्य राजाका वर्णन पुराणोंमें नहीं किया गया है।

पुराणमें राजाओंका जो कालपरिमाण दिया गया है, उससे ईस्वी सन् ४९८ के अन्तमें अथवा ४९९ के प्रारंभमें कल्किके अभ्युत्थानका समय मालूम होता है। राजाओंका समयपरिमाण संक्षेपमें इस प्रकार हैः—

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः।
एवं वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्॥
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत्।
अनन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः॥
एतत्कालान्तरं भाव्या अन्ध्रान्ता ये प्रकीर्तिताः॥
(अथवा 'अन्ध्रान्ते अन्वयाः स्मृताः।')

—वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य आदि।

उक्त वचनोंके अनुसार परीक्षितका जन्म महापद्मके अभिषेकके १०५० वर्ष पहले हुआ है। महापद्मने ३७४ से ३३८ (ईस्वी सन्से पूर्व) तक राज्य किया है, इस बातको हम अपने अन्यलेखमें बतला चुके हैं +। अतएव ३७४ से पीछेकी ओर गणना करके (३७४+१०५०) ईस्वी सन्से १४२४ वर्ष पूर्वमें परीक्षितका जन्म हुआ, ऐसा मानना पड़ेगा। महापद्मके मृत्युकाल (ईस्वी सन् पूर्व ३३८) से सम्मुखकी ओर ८३६ वर्ष गिननेसे (८३६–३३८) ४९८ ईस्वी सन् होता है। इसी समय तक 'अन्ध्राताः', अथवा 'अन्ध्रान्ते अन्वयाः' अर्थात् अन्ध्रोंके परवर्ती आर्य और म्लेच्छ राजाओंने राज्य किया था। इस वर्षके बाद और किसी भी राजाका परिचय पुराणोंमें नहीं पाया जाता—इसी जगह आकर भविष्य राजाओंका वंशपरिचय समाप्त हो गया है। अतएव पूर्ववर्णित अन्ध्रोंके परवर्ती म्लेच्छ और आर्य राजाओंको 'अन्ध्रान्ताः' कहा है, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है। इन अन्ध्रान्त राजाओंका राज्य ४९८ ईस्वीमें समाप्त हो गया है। अतएव इनके बाद ईस्वीसन् ४९९ का वर्ष कल्किके अभ्युदयका समय सिद्ध होता है।

पहले कहा जा चुका है कि एक ही प्रसङ्गमें यह बात कही गई है कि चन्द्रगुप्त, पुष्यमित्र आदि अन्यान्य इतिहासविदित पुरुषोंके साथ कल्किके कार्यकलाप भी भविष्यत्कालमें घटित होंगे, अतएव कल्किकी ऐतिहासकतामें कोई भी

+ J. B. O. R. S. Vol 1, pp. 111–116.

बाधा नहीं आती। राजवंशोंके वर्णनके समय अन्यान्य राजाओंके समान कल्किके भी कीर्ति-कलापोंका वर्णन किया गया है। उसके प्रति देवत्वका आरोप नहीं किया गया, किन्तु वह एक साधारण व्यक्तिके रूपमें ही उल्लिखित किया गया है। इसके सिवाय कल्किकी ऐतिहासिकता सिद्ध करनेके लिए केवल साधारण भविष्यत्कालके वर्णन पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता। पुराणोंमें, अनेक जगह कल्किके सम्बन्धमें सुस्पष्ट भूतकालकी क्रियाओंके भी प्रयोग पाये जाते हैं। वायुपुराण कहता है कि पराशर-वंशीय विष्णुयशा नामक कल्किने ('कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्य्यः प्रतापवान्'—वायु ३६,१०४) साधारण मनुष्यके रूपमें **जन्म ग्रहण किया था** ('मानवः स तु संजज्ञे पाराशर्य्यः प्रतापवान्—' वायु ३६,११०) और वे कलियुगके पूर्ण होनेपर उत्पन्न हुए थे ('पूर्णे कलियुगे भवत्'-वायु ३६, १११)। ब्रह्माण्डपुराण भी ठीक इसी प्रकार कहता है कि पराशर-वंशीय विष्णुयशा नामक काल्किने ('कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्य्यः प्रतापवान्'—ब्र० ७३, १०४) मनुष्य होकर बुद्धिवान् देवसेनके पुत्रके रूपमें जन्मग्रहण किया था ('मानवः सतु संजज्ञे देवसेनस्य धीमतः'—ब्र० ७३, ११०) और कलियुगके पूर्ण होने पर अवतार लिया था ('पूर्णे कलियुगेऽभवत्'—ब्र० ७३, १११)। मत्स्यपुराण कहता है—बुद्धने नवें अवतारके रूपमें जन्म ग्रहण किया था ('बुद्धो नवमको जज्ञे'—मत्स्य ४७, २४७) और कल्कि विष्णुयशा (विष्णुयशसः ?) पराशरवंशवालोंका नेता दशवाँ अवतार होगा ('...... भविष्यति। कल्की तु विष्णुयशसः पाराशर्य्यपुरःसरः ॥ दशमः' इत्यादि—मत्स्य ४७, २४८)। इसके बाद उक्त पुराण छः श्लोकोंमें कल्किके दिग्विजयका वर्णन करके कहता है कि कितने ही काल बीतने पर वह देव अन्तर्धान हो गया था ('ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत'—मत्स्य ४७ २५५)।

इस तरह भविष्यत्कालके साथ भूतकी क्रियाओंका मिश्रण रहनेसे साफ साफ समझमें आ जाता है कि, पुराणोंके लेखक कल्किसम्बन्धी घटनाओंको जानते तो थे भूतकालकी ही घटनाओंके रूपमें; परन्तु पुराणोंके साधारण नियमके अनुसार उन्हें भविष्यत्कालकी घटनाओंके रूपमें लिखनेके लिए लाचार होना पड़ा था। कल्किके जन्मस्थान और वंश आदिका परिचय एवं उसकी की हुई दिग्विजयका सिलसिलेबार वर्णन आदि बातें ऐसी नहीं मालूम होतीं, जो बिलकुल कल्पनाप्रसूत कही जा सकें। और फिर जब पुराणोंमें जगह जगह कल्किके वर्णनमें भूतकालकी क्रियाओंका प्रयोग हुआ है, तब तो यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि उसकी ऐतिहासिकता अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा सुदृढ भित्ति पर प्रतिष्ठित है।

इस बातके भी प्रमाण मिलते हैं कि, कल्किके कीर्तिकलापोंका वर्णन अभिनव है और वह पीछेसे जोड़ा गया है। ४९८ ईस्वी सन्‌के बाद जिन सब पुराणोंके अन्तिम संस्करण हुए हैं उन्हींमें यह कल्किका विवरण पाया जाता है। गार्गीसंहिताके अन्तर्गत युगपुराणमें लिखा है कि यवन अर्थात् ग्रीक लोगोंके ध्वंसकालके (ईस्वी सन्‌से लगभग १८८ वर्ष पूर्व) साथ ही कलिकालकी समाप्ति हो गई। उसमें कलियुगके वर्णनमें कल्किका उल्लेख नहीं है।

मनुसंहिता (अध्याय १, श्लो० ६९–७०), विष्णुपुराण (अंश ४, श्लो० २४–२६) और भागवतपुराण (स्कं० १२, श्लो० २–२९) के अनुसार कलियुग १२०० वर्षका होता है। जिस दिन श्रीकृष्णका देहान्त हुआ, उसी दिनसे (पुराणानुसार) कलियुगकी गणना आरंभ होती है और वह समय ईस्वी सन्‌से १३८८

वर्ष पहले है, यह हम अपने अन्य लेखमें प्रमाणित कर चुके हैं। अतएव मनुसंहिता और पुराणमें पहले कलियुगका जो परिमाण दिया था उसके अनुसार ईस्वी सन्से १८८ वर्ष पहले कलियुगका अन्त होता है। इसी समय सुङ्गवंशीय पुष्यमित्रके द्वारा यवन राजाओंका ध्वंस और सनातनधर्मका अभ्युत्थान हुआ। यह देखकर उस समयके पुराणकारोंने समझ लिया कि कलियुग समाप्त हो गया। इसीसे उन्होंने प्रकाशित कर दिया कि, कलियुगका अन्त हो गया* और युगपुराणके समान जो जो पुराण इसके बाद फिरसे संस्कृत तथा परिवर्धित नहीं हुए, उनमें वही वर्णन रह गया, उनमें कल्किकी और कोई भी बात नहीं जोड़ी गई। किन्तु पीछेके पौराणिकोंने जब देखा कि यवनोंके नाश हो जाने पर भी प्रजा पहलेके ही समान दुर्दशाग्रस्त हो रही है तब उन्होंने कलियुगका परिमाण बढ़ा दिया और वे पञ्चम शताब्दिके प्रारंभमें कल्किका अभ्युदयकाल ले गये। कल्किके द्वारा म्लेच्छवंशका ध्वंस हो जाने पर कलियुग पूरा हो गया और सारे दुःखोंका अन्त आ गया, इस प्रकारकी आशा उनके हृदयोंमें उठी; परन्तु उन्होंने देखा कि, दुःखोंका अन्त नहीं हुआ। युगपुराणमें यवनोंके नष्ट होनेके समय कलिके अन्तमें प्रजाकी जिस प्रकारकी दुर्दशा बतलाई गई है + ठीक उसी प्रकारकी भाषामें कल्किकृत म्लेच्छध्वंसके बाद भी प्रजाकी शोचनीय अवस्था वर्णित हुई है—"ततो व्यतीत कल्कौ तु......परस्परहताश्च निराकन्दा सुदुःखिताः" * इत्यादि भाषामें पौराणिकोंने प्रजाओंके दुःखकी कहानीका वर्णन किया और कलियुगका स्थितिकाल एक अनिर्दिष्ट भविष्यत् तक बढ़ा दिया। कलियुगके स्थितिकालके सम्बन्धमें हमने अन्य लेखमें पुराण और ज्योतिषशास्त्रके आधारसे विस्तृत आलोचना की है।

अभीतक जो कुछ कहा गया उससे प्रमाणित हो गया कि, पुराणोक्त कल्कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति है; और वह पञ्चम शताब्दिके अन्तिम भागमें उत्पन्न हुआ था। अब यह बतलाया जाता है कि वह कौन था।

पुराणोंमें कल्किके विषयमें जो विवरण मिलता है वह यह है:—

१ कल्किका परिचित नाम विष्णुयशस् अथवा विष्णुयशस है—('कल्किर्विष्णुयशा नाम'—वायु ३६,१०४ और ब्रह्माण्ड ७३, १०४। 'कल्कि तु विष्णुयशसः'—मत्स्य ४७,२४८।)

२ उनका जन्म सम्भल ग्राममें हुआ था—(भागवत १२ स्कन्द, २ अध्याय, १८ श्लोक; विष्णुपुराण चतुर्थांश, २४ अ०, २६ श्लो०)।

---

* भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः।
भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधाम्॥ इत्यादि

+ युगपुराणमें यवनोंके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है:—

भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः।
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपाः।

युगदोषदुराचाराः भविष्यन्ति नृपास्तु ते।
स्त्रीणां बालवधेनैव हत्वा चैव परस्परम्॥

\+ \+ \+

भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधाम्।

\+ \+ \+

शूद्रा कलियुगस्यान्ते भविष्यंति न संशयः।
यवनाः क्षयपयिष्यन्ति न शचेयं (?) च पार्थिवः।
मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदाः।
तेषामन्योन्यसंभावाः भविष्यन्ति न संशयः॥
आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम्।
ततो युगवशात्तेषां यवनानां परिक्षयम्॥

* वायुपुराण ३६ अ०, ११७ श्लो०, और ब्रह्माण्ड ७३ अ०, श्लो०, ११८।

यह संभल ग्राम राजपूतानेकी शाकम्भरी नगरी है, ऐसा अनेक शिलालेखों तथा पृथ्वीराजविजय आदि ग्रन्थोंसे निश्चय होता है।

३ उन्होंने एक साधारण मनुष्यके रूपमें जन्म लिया था, और वे देवसेन नामक एक पराशरगोत्रीय अथवा याज्ञवल्क्यगोत्रीय ब्राह्मणके पुत्र थे।

४ उनके शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी–('गात्रेण वै चन्द्रसमः' –वायु, ३६ अ० १११ श्लो०।)

५ वे बड़े भारी वीर थे और उन्होंने दिग्विजय किया था–(भागवत १२ स्कं० २ अ० १९ श्लो० और भविष्यपुराण ३ अंश २६ अ०, १ श्लो०।)

६ उन्होंने बहुत जल्दी चतुरंग-सेनायुक्त होकर समग्र भारतवर्षको जीत लिया था। वायुपुराणके ३६ वें अध्यायमें उन देशोंके नाम दिये हैं जिन्हें कल्किने जीता था:—

उदीच्यान् मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् १०६
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह।
गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनान्शकान्॥ १०७॥
तुषारान्बर्बरांश्चैव पुलिन्दान्दरदान्खसान्।
लम्पकानन्धकान् रुद्रान्किरातांश्चैव स प्रभुः १०८।

\+ \+ \+ \+ \+

प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली १०९॥

इनमेंसे ब्रह्माण्ड-पुराणमें रुद्रोंके बदले पौण्ड्र और बर्बरोंके बदले शबर आदि कई पाठभेद हैं। इन समस्त देशोंको जीतकर कल्किने साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की।

७ यह दिग्विजय केवल राज्यविजय ही नहीं थी, धर्मविजय भी थी। पुराणोंमें लिखा है कि, कल्किने नृपनामधारी म्लेच्छराजाओंको नष्ट किया था, धर्मद्वेषी पाषण्डोंको शस्त्रधारी ब्राह्मणोंद्वारा परिवृत होकर मारा था, प्रायः अधार्मिक वृषलोंको नष्ट किया था और म्लेच्छों तथा दस्युओंको मारकर नष्टप्राय आर्यधर्मका उद्धार किया था *।

८ उनका यह दिग्विजय क्रूरकर्म ('क्रूरेण कर्मणा'–वायु० ३६,११४) होने पर भी धर्मकी रक्षा और लोकके हितके लिए किया गया था ('धर्मत्राणाय लोकाहितार्थाय—' वायु ३६,१०३।)

९ अपना कार्य समाप्त करके उन्होंने गंगा-यमुनाके मध्यवर्ती भागमें देहत्याग किया। यथा, वायुपुराण अ० ३६:—

ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः। ११५

\+ \+ \+ \+ \+

गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः। ११७

१० उन्हें इस दिग्विजयकार्यमें २५ वर्ष लगे थे। यथा:—

पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः।
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः॥ ११३

—वायु, अ० ३६।

अब यह प्रश्न होता है कि ये स्वदेशरक्षक, स्वधर्मपालक, और लोकहितैषी महात्मा कौन थे। पुराणवर्णित युगके शेष अंशमें कल्किके समान और कोई भी राजा इतना यशस्वी नहीं हो सका। उनकी महिमा सबसे अधिक गाई गई है।

उनके सम्बन्धमें हम जानते हैं कि उनका नाम विष्णुयशस् था, उनका जन्म राजपूतानेमें संभवतः पाँचवीं शताब्दिके शेष भागमें हुआ था, और उनकी दिग्विजय दक्षिणमें द्रविड देशसे लेकर उत्तरापथ पर्यन्त और पश्चिमसमुद्रसे खसोंके देश आसाम तक हुई थी।

---

* मत्स्य ४७, २४९-५०। वायुपुराण ३६, १०५-६। भागवत १२ स्कन्द, २ अ०, २० श्लोक।

इन सब विषयोंकी आलोचना करके हम विद्वानोंके सामने इस सिद्धान्तको निःसन्देह होकर रखते हैं कि ये पुराणोक्त विष्णुयशाः और मालवाधिपति विष्णुवर्द्धन यशोधर्मन् एक ही व्यक्ति हैं। 'विष्णुवर्द्धन' और 'यशोधर्मन्' इन दोनों नामोंके आद्य अंश 'विष्णु' और 'यशस्' मिलाकर पुराणकारोंने 'विष्णुयशस्' नाम बनाया है। 'विष्णुवर्द्धन' का 'वर्द्धन' शब्द नाम नहीं है; यह सम्राटोंकी वीरत्वज्ञापक उपाधिमात्र है। जैसे अशोकका नाम अशोकवर्द्धन, हर्षका हर्षवर्द्धन, आदि। * संभवतः दिग्विजयके बाद राज्यविजय और धर्मविजय इन दो प्रकारके कार्योंके परिचायक विष्णुवर्द्धन और यशोधर्मन् ये दो नाम ग्रहण किये गये थे।

विष्णुयशोधर्मन्ने अपने शिलालेखमें प्रकट किया है कि, उन्होंने उस युगके निन्द्य आचारवाले राजाओंके हाथसे देशका उद्धार किया है। उन्होंने लोकके हितके लिए दिग्विजयकार्य आरंभ किया था—(लोकोपकारव्रतः)। वे अपने समसामायिक राजाओंके साथ सम्बन्ध नहीं रखते थे और उन्होंने मनु, भरत, अलर्क, मान्धाता आदि राजाओंका काल उपस्थित कर दिया था। वे अपने जीवितकालमें ही अधर्मध्वंसकर्त्ता और धर्मके निकेतन गिने जाने लगे थे+। उनके ब्राह्मण प्रतिनिधि भी इस बातके लिए प्रसिद्ध हैं कि, उन्होंने राज्यमें 'सतयुग' ला दिया है×।

ये सब बातें पुराणवर्णित विष्णुयशाके कार्योंके साथ मिल जाती हैं। बल्कि हमारी समझमें तो इस राजाकी 'विष्णु' आख्या और अपरिमित वीरकीर्तिका विचार करके ही संभवतः पुराणकारोंने उसे भगवान् विष्णुका अंशसंभूत मान लिया था।

विष्णुयशोधर्मन् और विष्णुयशस् इन दोनोंका जन्मस्थान एक ही है। मन्दसोर ग्राममें यशोधर्मदेवका जो जयस्तम्भ मिला है, उसमें इस दिग्विजयी राजाके जन्मस्थानका उल्लेख है।

दोनोंके जीते हुए देशोंके वर्णनमें भी बहुत एकता है। विष्णुयशोधर्माने लौहित्य अर्थात् ब्रह्मपुत्रनदके उपकण्ठसे लेकर महेन्द्रगिरिके नीचेतक और हिमालयसे लेकर पश्चिमसागरतककी भूमिको जीता था। यह वर्णन विष्णुयशाके जीते हुए देशोंके वर्णनके साथ मिलता है।

दोनोंका अभ्युदयकाल भी मिलता है। विष्णुयशोधर्माने हूणराजा मिहिरकुलको परास्त किया था। मिहिरकुलके पिता तोरमाणका राज्यकाल बुधगुप्तके कुछ ही पीछे है और बुधगुप्तका समय ईस्वी सन् ४८४-८५ है। * मिहिरकुल यशोधर्माके द्वारा काश्मीर देशमें पराजित हुआ था। काश्मीर जानेके पहले मिहिरकुलने लगभग पन्द्रह वर्ष भारतमें बिताये थे, यह बात, ग्वालियरके शिलालेखसे मालूम होती है×। अतः यशोधर्माके द्वारा मिहिरकुलका पराजय ईस्वी सन् ४९९ के बाद और ५३३-३४ में मन्दसोरके विजयस्तंभ स्थापित होनेके पूर्व हुआ था। इसके साथ पुराणवर्णित कल्किके अभ्युदयकाल (४९९ ईस्वी) की एकता है।

---

* कितने ही सिक्कोंमें 'विष्णु' नाम खुदा हुआ है। डा० हार्नलीके मतसे ये सब सिक्के यशोधर्मा विष्णुवर्द्धनके हैं। Hoernle J. R. A. S. 1903 p. 552; Ibid, p.p. 133-134.

+ Fleet, gupta Inscriptions. p.p. 146-147.

× Ibid, p. 154. 'कृत इव कृतमेतद् येन राज्यं निराधि।'

* Fleet, G. I., p. 159.

× Gwalior Stone Inscription, F. G. I., p. 161.

शिलालेखोंसे मालूम होता है कि, विष्णुयशोधर्माने किसी सुविख्यात राजकुलमें जन्म नहीं लिया था और पुराणोंमें विष्णुयशा भी एक साधारण आदमीके पुत्र बतलाये गये हैं। दोनोंने ही बड़े भारी साम्राज्यकी स्थापना की थी।

इस तरह दोनोंमें सब बातोंमें इतनी एकता देखी जाती है कि फिर इन दोनोंके एक होनेमें कोई भी सन्देह बाकी नहीं रह जाता है।

इस विषयमें कुछ और भी प्रमाण मिले हैं जिनसे कल्किकी ऐतिहासिकता अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है:—

१ बंगाली कवि चण्डीदासके समयतक (चौदहवीं शताब्दि) इस तरहका विश्वास जम रहा था कि, बुद्ध और अन्यान्य अवतारोंके समान कल्कि भी भूतकालमें हो चुके हैं। यथा— " कल्किरूपे तोक्षे दालिले दुष्टजन "—(बंगीय साहित्य-परिषत् पुस्तकालयके चण्डीदासकृत हस्तलिखित 'कृष्णकीर्तन' ग्रन्थसे।) इससे जान पड़ता है कि कल्कि भविष्यतमें होनेवाले हैं, यह विश्वास बहुत प्राचीन नहीं है।

२ तेरहवीं शताब्दिके जयदेवने भी कल्किको भूतकालका अवतार माना है। यथा— "केशवधृतकल्किशरीर।"

३ कल्किपुराणके पाठसे मालूम होता है कि, उसमें कल्किकी जीवनकी सारी ही घटनायें भूतकालके रूपमें वर्णन की गई हैं। जैसे कि कल्किके जन्मसम्बन्धमें कहा है—

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवम्।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ॥

—अ० २ श्लो० १५।

ततः स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालितः।

—अ० ३, श्लो० ३०।

४ इस चौथे प्रमाणके द्वारा कल्किकी ऐतिहासिकता और उनका आविर्भावकाल निःसन्दिग्धरूपसे स्थापित होता है। जिनसेन नामके जैनाचार्यने शक संवत् ७०६ में 'हरिवंश' नामक ग्रन्थ बनाया है। उसमें राजाओंके कालपरिमाणके समयमें जो कुछ कहा है वह भारतवर्षके इतिहासमें बहुत ही मूल्यवान् है:—

वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिक्ष्यते।
लोकेऽवन्तिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः॥
षष्ठिवर्षाणि तद्राज्यं ततो विजयभूभुजाम्।
शतं च पञ्च पञ्चाशद्वर्षाणि तदुदीरितम्॥
चत्वारिंशन्मुरुण्डानां भूमण्डलमखण्डितम्।
त्रिंशत्तु पुष्यमित्राणां षष्टिर्वस्वग्निमित्रयोः॥
शतं रासभराजानां नरवाहनमप्यतः।
चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिंशच्छतद्वयम्॥
भद्रवाणस्य तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयम्।
एकत्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्॥
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता।
ततोऽजितंजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः॥४८८-९३

—अध्याय ६०

एक जगह जिनसेनने शकाब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है:—

वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत्॥

इन सब श्लोकोंसे मालूम होगा कि जिनसेनने कल्किराजाको गुप्त राजाओंके चालीस वर्ष बाद और महावीर स्वामीसे ९९० वर्ष बाद स्थापित किया है; अर्थात् उनकी गणनाके अनुसार कल्किका राज्यकाल शक संवत् ३८५ (ई० सन् ४६३) से आरंभ होता है। इससे मेरा निश्चित किया हुआ पाँचवीं शताब्दीका शेष भाग ही कल्किका अभ्युदयकाल पाया जाता है और उक्त समयसे केवल ३०० वर्ष बादके एक ग्रन्थमें यह वर्णन मिलता है। गुप्त राजाओंके बाद ही कल्किका समय बतलानेसे जान पड़ता है कि ईस्वी सन ४६० के लगभग गुप्तसाम्राज्यके नष्ट होजाने

पर उनका अभ्युदय हुआ। पुराणोंके उल्लेखोंकी मैंने जैसी व्याख्या की है, उसके साथ यह बात मिल जाती है।

जिनसेनने कल्किको जैनोंके प्रबल शत्रुके रूपमें वर्णन किया है। कल्किपुराणमें भी इसी प्रकार लिखा है।

इस लेखमें हमने दो बातोंको सिद्ध किया है—एक तो यह कि पुराणवर्णित कल्कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और दूसरी यह कि वह संभवतः विष्णुवर्द्धन यशोधर्मा है। दूसरी बातके सम्बन्धमें सन्देह रह सकता है; परन्तु पहली बातमें कोई भी सन्देह नहीं है। हम समझते हैं, भारतके इतिहासमें कल्किका स्थान चन्द्रगुप्तकी अपेक्षा नीचा नहीं है। धर्म और समाजकी दृष्टिसे कल्किका स्थान बहुत ही ऊँचा है। गुप्तसाम्राज्यके नष्ट होने पर जब अनेक प्रकारके विदेशी म्लेच्छ राजा भारतकी सभ्यता और धर्मको उच्छेद करनेके लिए उद्यत हो गये, उस समय कल्कि नष्टप्राय जातीय सभ्यताका पुनरुद्धार करनेके लिए उठा और भारतके अनेक राजाओंको एकतासूत्रमें बाँधकर (कल्किपुराण अध्याय २ का तीसरा अंश) उसने धर्मद्रोहियोंका नाश किया। वह एक तरफसे मेजिनी था और दूसरी ओरसे नेपोलियन। अबतक भारतवर्षका छट्ठी शताब्दिका इतिहास जिस अन्धकारमें निमग्न था, वह कल्किके इतिहासके द्वारा बहुत कुछ दूर हो जायगा और कल्किके अभ्युदयके परवर्ती कालके राष्ट्र, धर्म और समाजका स्वरूप कल्किके इतिहासके द्वारा अधिक स्पष्टतासे समझा जा सकेगा।

नोट। कल्किके सम्बन्धमें हरिवंशपुराणके जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं उनसे भी पुरानी गाथायें 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' नामक ग्रन्थकी हैं जो हमने 'लोकविभाग और त्रिलोकप्रज्ञप्ति' शीर्षक लेखमें उद्धृत की हैं। यह ग्रन्थ हमारी समझमें हरिवंशपुराणसे प्राचीन है और इसलिए ऐतिहासिक दृष्टिसे इसकी गाथाओंकी प्रामाणिकता और भी अधिक है। जैनग्रन्थोंमें कल्किका नाम चतुर्मुख, उसके पिताका नाम इन्द्र और पुत्रका नाम अजितंजय मिलता है। इस विषयमें सभी जैनग्रन्थ एकमत हैं; परन्तु हिन्दुओंके पुराणग्रन्थोंमें उसका नाम विष्णुयशः और उसके पिताका नाम देवसेन मिलता है। पुत्रका उल्लेख नहीं है। मृत्युसम्बन्धी घटनाके विषयमें भी मतभेद है। इधर प्रो० पाठकने मिहिरकुलको कल्कि सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। पाठक महाशयके लेखका सारांश आगे दिया जाता है। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें कल्किके सम्बन्धमें कुछ और ही लिखा है। वह भी उपस्थित है। आशा है कि श्रीयुत जायसवाल महाशय और दूसरे पुरातत्त्वज्ञ इन सब बातोंपर विचार करनेका कष्ट उठायँगे। सम्पादक।

गुप्त राजाओंका काल, मिहिरकुल और कल्कि।

अभी कुछ समय पहले भाण्डारकर इन्स्टिट्यूटकी स्थापनाके समय डा० भाण्डारकरको एक ऐतिहासिक ग्रन्थ अर्पण किया गया था, उसमें श्रीयुत पं० काशीनाथ बापूजी पाठक बी. ए. का एक महत्त्वका लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका सारांश 'हिन्दी चित्रमयजगत्' परसे नीचे उद्धृत किया जाता है:—

प्राचीन कालमें उत्तर भारतमें गुप्तवंशके बड़े शक्तिशाली राजा हो गये हैं। उन्होंने लगभग दो सौ वर्ष राज्य किया था। राज्य करनेकी उनकी शैली बहुत उत्तम थी, इस कारण उस समय भारत देश बड़े वैभवके शिखर पर चढ़ा था। धनधान्यकी खूब समृद्धि थी, अतएव देशकी खूब उन्नति हुई थी। उस समय प्रचलित धर्मोंमें हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म और जैनधर्म मुख्य थे। देशमें शान्ति छाई हुई थी। इस कारण लोग खूब

सम्पन्न और सद्गुणी थे । उस समय चूँकि बौद्ध धर्मका उत्कर्ष हो रहा था, इस कारण चीन देशसे अनेक यात्री बौद्धधर्मके तत्त्व समझनेके लिए, संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेके लिए और बौद्धोंके पवित्र स्थानोंका दर्शन करनेके लिए इस देशमें आया करते थे । इसी समय कालिदासके समान प्रख्यात कवि और दिङ्नागके समान प्रख्यात तत्त्ववेत्ता हो गये । गुप्त राजाओंके अनेक ताम्रपट और शिलालेख मिले हैं । उनमें उन राजाओंने अपना कालनिर्देश भी किया है । परन्तु उन्होंने जो अपना संवत् दिया है उसका आरम्भ कहाँसे समझा जावे, इस विषयमें विद्वान् लोगोंमें अनेक वर्षोंसे चर्चा हो रही है । लेकिन उसका विश्वासयोग्य निर्णय नहीं हुआ । इस विषयमें अनेक विद्वानोंने बड़े बड़े निबन्ध लिखे हैं । जिन विद्वानोंने इसका निर्णय करनेके लिए प्रयत्न किया है वे बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे और हैं । कुछ विद्वानोंने इस विषयका विवेचन करते हुए अल्बरूनीके ग्रन्थका आधार लिया है । गजनीके महमूद बादशाहने ईस्वी सन्की ग्यारहवीं सदीमें भारतवर्ष पर चढ़ाई की, तब उसके साथ अल्बरूनी नामक विख्यात अरब जातिका पंडित आया था । उसने अपने ग्रन्थमें गुप्त राजाओं और बल्लभी राजाओंका वृत्तान्त दिया है । उसका कथन है कि शक संवत् दो सौ एकतासलीसवें वर्षमें गुप्तकाल शुरू हुआ और गुप्तकालको ही बल्लभी काल कहते थे । गुप्तकाल, गुप्तराजाओंका विस्तृत राज्य लय हो जाने पर प्रारम्भ हुआ । परन्तु कई कारणोंसे उसका यह कथन विद्वानोंको मान्य नहीं हुआ । अन्तमें भारतसरकारने इस बातका निर्णय करनेके लिए सन् १८८४ के लगभग डा० फ्लीटकी नियुक्ति की । डा० फ्लीटने उस समय तक उपलब्ध होनेवाले सारे शिलालेखों और ताम्रपटोंको एकत्र करके एक बड़ी भारी पुस्तक छपाई । यह पुस्तक लिखते समय ग्वालियर राज्यके मन्दसौर नामक स्थान पर डा० फ्लीटको एक बड़ा भारी शिलालेख मिला । उस शिलालेखसे जान पड़ता है कि मालवसंवत् ४९३ में कुछ कोष्टी (कोरी) लोगोंने वहाँ एक सूर्यका मन्दिर बनवायाथा । उस समय कुमारगुप्त नामक गुप्तवंशीय राजा राज्य करता था । इसके ३६ वर्ष बाद जब कि उसी मन्दिरका जीर्णोद्धार किया गया, उस समय मालवसंवत् ५२९ था । इस शिलालेखके विषयमें फ्लीट साहबने अपना यह मत दिया कि मालवसंवत् विक्रमसंवत् ही है । और यह प्रतिपादन किया कि गुप्तशक और शालिवाहन शकमें दो सौ बयालीस वर्षका अन्तर है । अन्य विद्वान् लोगोंको यह मत पसन्द नहीं आया । इसका परिणाम यह हुआ कि फ्लीट साहबका ग्रन्थ निकल जाने पर भी गुप्तकालके विषयमें वादविवाद जारी ही रहा ।

इतनेमें जैन ग्रन्थोंमें इस विषयमें बहुत अच्छा वृत्तान्त मिल गया है ।

इन जैनग्रन्थोंमें पहला ग्रन्थ जिनसेन आचार्यकृत हरिवंश है । यह ग्रन्थ शक संवत् ७०५ में लिखा गया है । दूसरा ग्रन्थ उक्त जिनसेन आचार्यके * शिष्य गुणभद्राचार्यका रचा हुआ उत्तरपुराण है । तीसरा ग्रन्थ नेमिचन्द्राचार्यकृत त्रिलोकसार है । ये ग्रन्थकार कहते हैं कि महावीर स्वामीके निर्वाणके ६०५ वर्ष ५ महीने बाद शक राजा उत्पन्न हुआ । शक राजाके ३९४ वर्ष सात महीने बाद चतुर्मुख कल्कि नामक दुष्ट राजा हुआ । अर्थात् महावीर स्वामीके

* श्रीयुत पाठक महाशय अभीतक हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनको और आदिपुराणके कर्त्ता (गुणभद्रके गुरु) को शायद एक ही समझ रहे हैं । पर यह भ्रम है । विद्वद्रत्नमालामें हम इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं । —सम्पादक ।

निर्वाणके ठीक १००० वर्ष बाद कल्कि राजाका जन्म हुआ। उस वर्ष माघ संवत्सर था।

इससे ऐसा जान पड़ता है कि, शकराजाके बाद ३९४ वें वर्षमें माघ संवत्वर था। इसके तीन वर्ष बाद वैशाख संवत्सर प्राप्त हुआ। वैशाख संवत्सरके रहते हुए १५६ वाँ गुप्तवर्ष था। उस समय परिव्राजक महाराज हस्ती नामक मांडलिक राजा राज्य करता था। चूंकि यह राजा गुप्त राजाओंका मांडलिक था, इस कारण गुप्त राजाओंका वर्चस्व इसने अपने ताम्रपटमें स्वीकार किया है। इसके समयमें गुप्त राजा राज्य करते थे; और उस समय गुप्त वर्ष १५६ वाँ था। शक ३९४ में तीन वर्ष जोड़नेसे ३९७ होते हैं। इस लिए वैशाख संवत्सर रहते हुए ३९७ शकवर्ष था; और १५६ गुप्त वर्ष था। इससे जान पड़ता है कि गुप्त वर्षमें २४१ वर्ष मिलानेसे शकवर्ष आता है; अथवा शकवर्ष और गुप्तवर्षमें ठीक २४१ वर्षका अन्तर होता है। इस लिए जब कि यह कहा है कि कल्कि राजाका जन्म ३९४ वें शकवर्षमें हुआ तब फिर उसमेंसे २४१ वर्ष घटा देनेसे यह सिद्ध होता है कि १५३ वें गुप्त वर्षमें कल्कि राजा उत्पन्न हुआ। अब शक संवत् ३९४ में यदि १३५ मिलाये जायँ तो ५२९ मालवसंवत् आता है। अर्थात् मालवसे तात्पर्य विक्रम सिद्ध होता है। क्योंकि किसी भी शकवर्षमें १३५ जोड़नेसे विक्रमसंवत् आता है। यह बात सुप्रसिद्ध है। मन्दसौर-शिलालेखमें ५२९ मालव वर्ष आनेका उल्लेख ऊपर हो चुका है। यह वर्ष मन्दिरके जीर्णोद्धार करनेका है। ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि, मालव संवत् ४९३ में कोष्टी लोगोंके द्वारा इस मन्दिरके बनाये जानेका उक्त शिलालेखमें उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि कुमारगुप्त राजा विक्रमसंवत् ४९३, गुप्तसंवत् ११७ और शक ३५८ में राज्य करता था।

इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि, गुप्तसंवत् और विक्रमसंवत्में ३७६ वर्ष का अन्तर है। विरावलमें एक शिलालेख मिला है उसमें विक्रम संवत् १३२० और वल्लभीसंवत् ९४५ आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी रविबारका कालनिर्देश किया गया है। गणित करनेसे ऐसा जान पड़ता है कि, इस शिलालेखमें दिया हुआ संवत् कार्तिकादि है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि, उस समय चैत्रादि विक्रमसंवत् १३२१ था। अर्थात् शक संवत् ११८६, चैत्रादि विक्रम १३२१ और वल्लभी वर्ष ९४५ बराबर होते हैं।

शक		विक्रम		वल्लभी
११८६	=	१३२१	=	९४५
३५८	=	४९३	=	११७
८२८		८२८		८२८

अर्थात् पहले अंकोंसे दूसरे अंकोंको घटा देनेसे ८२८ बाकी बचते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि, वल्लभी नाम गुप्तशकका ही है और मालव नाम चैत्रादि विक्रमसंवत्का है। और इसी लिए ९४५ वल्लभी वर्षमें २४१ मिलानेसे ११८६ आते हैं। इसकी सिद्धि दो रीतियोंसे होती है। पहले माघ संवत्सरका हमने उल्लेख किया है; और फिर विरावलके शिलालेखके अंकोंका उपयोग किया है। इस तरह जैन लोगोंके दिये हुए वृत्तान्तसे आज लगभग ७८ वर्षके वादविवादका निर्णय हुआ है।

यहाँ, इस समय एक बातका और भी उल्लेख करना चाहिए कि, इस समय जिस प्रकार प्रभवविभवादि साठ संवत्सर जारी हैं, उसी प्रकार ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दिमें माघ वैशाखादि द्वादश संवत्सर जारी थे।

जैनग्रन्थकार यह भी कहते हैं कि, कल्कि राजाने शक ४३४ में गुप्तोंका विस्तृत राज्य

विध्वंस किया। यह राजा बड़ा दुष्ट था, इसने जैनियोंके निर्ग्रन्थ साधुओंको बहुत ही सताया। शिलालेखोंसे मालूम होता है कि गुप्तोंके राज्यका लंय करनेवाला मिहिरकुल नामक बलाढ्य राजा हो गया है। इस मिहिरकुल राजाका सविस्तर वर्णन हुएनसंग नामक प्रख्यात चीनी यात्रीने अपने प्रवासवर्णनमें दिया है। इसके सिवाय, इस राजाकी दुष्ट कृतिके विषयमें राजतरंगिणी नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी विशेष वृत्तान्त आया है। यह दुष्ट राजा गुप्तोंके बाद उनका राज्य अधिकृत करके चालीस वर्ष राज्य करता रहा; और ७० वर्षकी अवस्थामें मरा। यह स्पष्ट है कि, इसीका नाम चतुर्मुख कल्कि था।

लोकविभाग और त्रिलोक-प्रज्ञप्ति।

[दो प्राचीन ग्रन्थ।]

लोकविभाग नामक ग्रन्थके विषयमें हम बहुत दिनोंसे सुन रहे थे कि यह बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। श्रीयुत विन्सेंट ए. स्मिथने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास (अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया) के पृष्ठ ४७१ में इसका उल्लेख किया है और इसे शककी चौथी शताब्दिका बतलाया है। खोज करने पर हमें इसकी एक प्रति स्वर्गीय विद्याप्रेमी सेठ माणिकचन्दजीके सरस्वतीभण्डारसे प्राप्त हो गई। इसकी श्लोकसंख्या २२३० और पत्रसंख्या ७१ है। भट्टारक भुवनकीर्तिके शिष्य ज्ञानभूषण भट्टारकके उपदेशसे 'नागद्रा साहवाघ्र' नामके किसी लेखकने इसे लिखा है। अतएव यह विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिकी लिखी हुई है। ज्ञानभूषण इसी शताब्दिमें हुए हैं।

ग्रन्थकी भाषा संस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुषक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग और मोक्ष विभाग नामके ११ अधिकार या अध्याय हैं। संक्षेपमें यह त्रैलोक्यसारके ढंगका ग्रन्थ है। इसका मंगलाचरण यह है:—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान्।
व्याख्यास्यामि समासेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १॥

अन्तिम प्रशस्तिके श्लोक ये हैं:—

भवे (व्ये) भ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्द्धमानार्हता
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः।
आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानिता (तं)
साधुभिः ॥ १

वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलि (क) नामनि पाणराष्ट्रे,
शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दिः ॥ २ ॥

संवत्सरे तु द्वाविंशे कांचीशसिंहवर्मणः।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥ ३ ॥

पञ्चादशशतानि षड्विंशत्यधिकानि वै।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं छन्दसानुष्टुभेन च ॥ ४ ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नाम एकादश प्रकरणं समाप्तं।

प्रशस्तिके उक्त श्लोकोंका अर्थ इस प्रकार होता है—

"देवों और मनुष्योंकी सभामें भगवान् वर्द्धमान् अरहंतने भव्य जनोंके लिए जो जगत्का सारा स्वरूप कहा था और जिसे सुधर्मा स्वामी आदि गणधरोंने जाना था, वह आचार्योंकी परम्पराद्वारा चला आया और उसे सिंहसूरिने भाषाका परिवर्तन करके रचा। निपुण साधुओंने इसका सम्मान किया ॥ १ ॥

"जिस समय उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें शनिश्चर, वृषराशिमें बृहस्पति और उत्तरा फाल्गुनीमें चन्द्रमा था, तथा शुक्लपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन

शुक्ला पूर्णिमा थी) उस समय पाणराष्ट्रके पाटलि (पटना ?) ग्राममें इस शास्त्रको पहले सर्वनन्दि नामक मुनिने लिखा ॥ २ ॥

" कांचीके राजा सिंहवर्माके २२ संवत्सरमें और शकके ३८० वें वर्षमें यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

" यह शास्त्रका संग्रह १५२६ अनुष्टुप् छन्दोंमें समाप्त हुआ है ।"

प्रशस्तिके इन श्लोकोंको पढ़कर हमें इस ग्रन्थकी प्राचीनताके विषयमें बड़ा कुतूहल हुआ । क्योंकि शक संवत्का इससे पुराना उल्लेख अबतक कहीं भी नहीं मिला है । यद्यपि ग्रन्थकी प्राचीनताके विषयमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं था, फिर भी हमें ग्रन्थको एक बार अच्छी तरह देख जानेकी आवश्यकता मालूम हुई । हमने देखा कि, इसमें ग्रन्थान्तरोंसे भी कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं । सबसे पहले हमारी दृष्टि त्रिलोकप्रज्ञप्ति पर पड़ी । इस ग्रन्थकी पचासों गाथायें लोकविभागमें उद्धृत हैं । हम अकलंकसरस्वतीभवन काशीके मंत्री पं० उमरावसिंहजीके और पं० इन्द्रलालजी साहित्यशास्त्रीके बहुत ही कृतज्ञ हैं, कि हमारे लिखनेसे उक्त महाशयोंने त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिकी दो हस्त लिखित प्रतियाँ हमारे पास तत्काल ही भेज दीं । जब लोकविभागकी ' उक्तं च ' गाथायें त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें मिल गईं, तब हमें इस बातसे और भी अधिक प्रसन्नता हुई कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति लोकविभागसे भी पुराना ग्रन्थ है ।

परन्तु इसके बाद ही मालूम हुआ कि लोकविभागमें त्रैलोक्यसारकी भी गाथायें मौजूद हैं, तब हमारी उक्त प्रसन्नता हवा हो गई । क्योंकि त्रैलोक्यसार विक्रमकी ११ वीं शताब्दिका बना हुआ ग्रन्थ है, और यह सुनिश्चित है । क्योंकि त्रैलोक्यसारकी संस्कृतटीकामें पं० माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव-जो त्रैलोक्यसारके कर्त्ता नेमिचन्द्रके शिष्य थे-स्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं कि यह ग्रन्थ मंत्रिवर चामुण्डरायके प्रतिबोधके लिए बनाया गया है और चामुण्डरायके बनाये हुए त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणमें उसके बननेका समय शक संवत् ९०० (वि० सं० १०३५) लिखा हुआ है । कनड़ीके और भी कई ग्रन्थोंसे चामुण्डराय और नेमिचन्द्रका समय यही निश्चित होता है ।

लोकविभागमें त्रैलोक्यसारकी गाथा देते समय स्पष्ट शब्दोंमें ' उक्तं च त्रैलोक्यसारे ' इस प्रकार लिखा है । इस कारण यह सन्देह भी नहीं हो सकता कि, वे गाथायें किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थकी होंगी और उससे लोकविभागके समान त्रैलोक्यसारमें भी ले ली गई होंगी, क्योंकि त्रैलोक्यसार संग्रहग्रन्थ है । अतः सिद्ध हुआ कि लोकविभाग त्रैलोक्यसारसे पीछेका, ग्यारहवीं शताब्दिके बादका, ग्रन्थ है ।

लोकविभागमें त्रैलोक्यसारकी जो गाथायें उद्धृत की गई हैं, उनमेंसे दो ये हैं:—

वेलंधरभुजगविमाणाण सहस्साणि बाहिरे सिहरे ।
अंते बावत्तरि अडवीसं वादालयं लवणे ॥

दुतडादो सत्तसयं दुकोसअहियं च होइ सिहरादो ।
णयराणिहु गयणतले जोयण दसगुणसहस्स वासाणि ।

ये त्रैलोक्यसारकी ८९८-९९ नम्बरकी गाथायें हैं और लोकविभागमें ४२२ वें नम्बरके श्लोकके बाद उद्धृत की गई हैं । इसी प्रकारकी और भी चार पाँच गाथायें हैं ।

त्रैलोक्यसंग्रह नामके एक और ग्रन्थकी भी कुछ गाथायें लोकविभागमें उद्धृत की गई हैं, परन्तु यह ग्रन्थ हमें कहींसे प्राप्त नहीं हो सका ।

---

१ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें पाण, शवर, पुलिंद आदिको नीच जातियोंके भेदोंमें गिनाया है । क्या पाणराष्ट्र इन्हीं नीचोंमेंकी किसी जातिके राज्यको कहा होगा ?

२ पाटलिपुत्र पटनाका पुराना नाम है ।

अत एव उसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता ।

जब लोकविभागके निर्माणसमयमें सन्देह हो गया, तब और अधिक छान-बीनकी आवश्यकता मालूम हुई और अन्तमें यह निश्चय हो गया कि, वह अपेक्षाकृत आधुनिक ही है—पुराना नहीं है । इसके पाँचवे अध्यायके ४२ वें श्लोकके बाद 'उक्तं चार्षे' लिखकर तीन श्लोक उद्धृत किये गये हैं । हम जानते हैं कि बहुतसे ग्रन्थकार जिनसेनस्वामीके आदिपुराणका 'आर्ष' शब्दसे उल्लेख करते हैं । अतएव हमें आशा हुई कि ये श्लोक आदिपुराणमें मिल जायँगे और अन्तमें हमारी आशा सफल भी हुई । आदिपुराणके तीसरे पर्वमें हमें ये श्लोक मिल गये:—

ततस्तृतीयकालेऽस्मिन्व्यतिक्रामत्यनुक्रमात् ।
पल्योपमाष्टभागस्तु यदास्मिन्परिशिष्यते ॥
कल्पानोकहवीर्याणां क्रमादेव परिच्युतौ ।
ज्योतिरंगास्तदा वृक्षा गता मन्दप्रकाशतां ॥
पुष्पदन्तावथाषाढ्यां पौर्णमास्यां स्फुरत्प्रभो ।
सायाह्ने प्रादुरास्तां तौ गगनोभयभागयोः ॥

आदिपुराणमें इनका नम्बर ५५–५६–५७ है । आदिपुराण विक्रमकी नौवीं शताब्दिके अन्तमें बना है, अतएव यह कहना होगा कि लोगविभाग उससे पीछेका है, शक संवत् ३८० का नहीं । तब ग्रन्थके अन्तमें जो समय लिखा है वह क्या जाली है? लोगोंको धोखा देनेके लिए लिखा गया है ?

प्रशस्तिके श्लोकोंको बहुत बारीकीके साथ समझनेसे इस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है । पहले श्लोकके 'भाषायाः परिवर्तनेन सिंहसूरर्षिणा विरचितं' पदसे और दूसरे श्लोकके 'शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनि सर्वनन्दिः' पदसे मालूम होता है कि इस ग्रन्थको पहले प्राकृत भाषामें सर्वनन्दि नामक मुनिने बनाया था, पीछे उसे भाषाका परिवर्तन करके सिंहसूरिने संस्कृतमें बनाया है । अतः शक संवत् ३८० (वि० सं० ५१२) पहले प्राकृत ग्रन्थके बननेका समय है, इस संस्कृत ग्रन्थके बननेका नहीं है । इसके बननेका समय या तो लिखा ही नहीं गया है, या लेखकोंकी गलतीसे छूट गया है ।

गरज यह कि उपलब्ध 'लोकविभाग' जो कि संस्कृतमें है, बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं है । प्राचीनतासे उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह एक बहुत पुराने—शक संवत् ३८० के बने हुए—ग्रन्थसे अनुवाद किया गया है । इस बातका निश्चय नहीं हो सका कि यह त्रैलोक्यसारसे कितने समय पीछे बना है । यदि इसके कर्त्ता सिंहसूरिके बनाये हुए किसी अन्य ग्रन्थका पता लगता, तो उससे शायद इसका निश्चय हो जाता ।

अब त्रिलोकप्रज्ञप्तिको लीजिए । इसका प्राकृत नाम 'तिलोयपण्णत्ति' है । बहुत बड़ा ग्रन्थ है । इसकी श्लोकसंख्या आठ हजार है । ग्रन्थका अधिकांश प्राकृत गाथाबद्ध है । कुछ अंश गद्यमें भी है । संस्कृतच्छाया या टीका कुछ भी साथ नहीं है । इस कारण इसका अभिप्राय समझनेमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है । अप्रचलित और दुर्लभ होनेके कारण अभीतक इसकी कोई भाषाटीका या वचनिका भी नहीं हुई है । इसका विषय इसके नामसे ही प्रकट है । त्रैलोक्यसारसे इसमें यह विशेषता है कि जो बात उसमें दश गाथाओंमें कही है, वह इसमें पचीस पचास गाथाओंमें लिखी गई है । सैकड़ों बातें ऐसी भी हैं, जो त्रैलोक्यसारमें बिलकुल ही नहीं हैं । त्रैलोक्यसारकी गाथासंख्या एक हजार है, अतएव यह उससे अठगुणा बड़ा ग्रन्थ है । ऐसा मालूम होता है कि त्रैलोक्यसार इसी ग्रन्थका सार है और आश्चर्य नहीं जो वह

इसे ही सामने रख कर लिखा गया हो । इसमें सामान्य जगत्स्वरूप, नारकलोकस्वरूप, भवनवासी, मनुष्यलोक, तिर्यक्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, सुरलोक और सिद्धलोक नामके ९ महा अधिकार या अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायके भीतर छोटे छोटे और भी अनेक अध्याय हैं।

इस ग्रन्थकी प्रारंभिक गाथा यह है—

अट्ठविहकम्मवियला णिट्ठियकज्जा पणट्ठसंसारा ।
दिट्ठसयलट्ठसारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ १ ॥

इसके बाद चार गाथाओंमें अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार किया है। फिर एक बड़ी लम्बी पीठिकादी है, जिसमें मंगल, कारण, हेतु, आदि बातों पर खूब विस्तारसे विचार किया है। उसके अन्तमें लिखा है:—

सासदपदमावण्णं पवाहरूवत्तणेण दोसेहिं ।
णिस्सेसेहिं विमुक्कं आइरियअणुक्कमाआदं ॥ ८६ ॥
भव्वजणाणंदयरं वोच्छामि अहं तिलोयपण्णत्ती ।
णिज्जरभत्तिपसादिदवरगुणचरणाणुभावेण ॥ ८७ ॥

इसमें त्रिलोकप्रज्ञप्तिको, भव्यजनानन्दकारिणी, प्रवाहरूपसे शाश्वती, निःशेषदोषरहित और आचार्योंकी परम्पराद्वारा चली आई, ये विशेषण दिये हैं और कहा है कि इसे मैं देवपूज्य श्रेष्ठ गुरुओंके चरणोंके प्रभावसे कहता हूँ।

आगे ग्रन्थान्तमें कुन्थुनाथसे लेकर वर्द्धमान तक आठ * तीर्थंकरोंको, पंचपरमेष्ठीको, और फिर चौवीस तीर्थंकरोंको नमस्कार करके नीचे लिखी गाथायें देकर ग्रन्थ समाप्त किया है:—

* पणमह जिणवरवसहं, गणहरवसहं तहेव गुणवसहं ।
दट्ठूण परिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढए वसहं ॥ ८० ॥
चुण्णिसरूव छकरणसरूवपमाण होदि किं जत्तं ।
अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥ ८१ ॥

एवं आइरियपरंपरागय तिलोयपण्णत्तिए सिद्धलोयसरूवनिरूवणपण्णत्तीणाम णवमो महाहियारो सम्मत्तं ।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिपबोधिदेण मया ।
भणिदं गंथं पवरं सोहंतु बहुस्सुदाइरिया ॥
तिलोयपण्णत्ती सम्मत्ता ।

इनमेंसे पहली गाथासे हमें यह मालूम होता है कि यह ग्रन्थ यतिवृषभाचार्यका बनाया हुआ है। ये यतिवृषभ आचार्य वही हैं, जिनका उल्लेख इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें किया गया है और जिन्हें कषायप्राभृतनामक द्वितीय श्रुतस्कन्धके चूर्णिसूत्रोंका कर्त्ता बतलाया है—

पार्श्वे तयोर्द्वयोरप्यधीत्य सूत्राणि तानि यतिवृषभः ।
यतिवृषभनामधेयो बभूव शास्त्रार्थनिपुणमतिः ॥ १५५ ॥
तेन ततो यतिपतिना तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण ।
रचितानि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ चूर्णिसूत्राणि ॥ १५६ ॥

अर्थात् " गुणधर आचार्यने कषायप्राभृत सूत्रके व्याख्यानको जिन नागहस्ति और आर्यमंक्षु मुनियोंके लिए लिखा था, उन दोनोंके पास यतिवृषभ नामके श्रेष्ठ यतिने उसे पढ़ा और फिर उसपर छह हजार श्लोकप्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे।" पूर्वोक्त गाथामें यतिवृषभको जो 'धर्मसूत्रपाठकवृषभं' (धर्मसूत्रोंके श्रेष्ठ पाठक) विशेषण दिया है, उससे भी इस बातकी पुष्टि

---

* प्रारम्भके १६ तीर्थंकरोंका स्तवन पहले आठ अधिकारोंके प्रारंभ और अन्तमें क्रमानुसार किया गया है।

* संस्कृतछाया—
प्रणमत जिनवरवृषभं गणधरवृषभं तथैव गुणवृषभं ।
दृष्ट्वा परिषद्वृषभं यतिवृषभं धर्मसूत्रपाठकवृषभं ॥ ८०
चूर्णिस्वरूपं षट्करणस्वरूपप्रमाणं भवति किं यत् तत् ।
अष्टसहस्रप्रमाणं त्रिलोकप्रज्ञप्तिनाम्न्यः ॥ ८१ ॥
मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रबोधितेन मया ।
भणितं ग्रन्थप्रवरं शोधयन्तु बहुश्रुताचार्याः ॥ ८२ ॥

होती है कि वे धर्मसूत्र या सिद्धान्त-ग्रन्थके कर्त्ता यतिवृषभ ही हैं । इसके सिवाय आगेकी गाथाका अर्थ यदि यह हो कि "चूर्णिस्वरूप और षट्करणस्वरूपके श्लोकोंका जो (संयुक्त) प्रमाण है, वही आठ हजार श्लोक इस त्रिलोकप्रज्ञप्तिका प्रमाण है ।"—तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है । यतिवृषभकी जो चूर्णिसूत्र नामक छः हजार श्लोक परिमित टीका हे, उक्त गाथाका 'चूर्णि-स्वरूप' शब्द उसीके लिए आया जान पड़ता है। 'षट्करणस्वरूप' नामका और भी कोई ग्रन्थ इन्हीं आचार्यका बनाया हुआ होगा और उसकी श्लोकसंख्या दो हजार होगी । वह ग्रन्थ बहुत करके गणितका होगा । करणसूत्र गणितके सूत्रोंको कहते हैं । उक्त दोनों ग्रन्थोंके बनानेके बाद श्रीयतिवृषभने त्रिलोकप्रज्ञप्तिको बनाया होगा, इस लिए इसमें उनका यह लिखना आश्चर्य-जनक नहीं कि हमारे पहले दो ग्रन्थोंकी एकत्रित श्लोकसंख्या जितनी है, उतनी इस ग्रन्थकी है । पाठक शंका करेंगे कि, पहली गाथामें जो 'यतिवृषभं' शब्द है, वह श्रेष्ठ आचार्योंका वाचक भी तो हो सकता है । हम इस बातको मानते हैं; परन्तु साथ ही यह भी कहते हैं कि, ग्रन्थकर्त्ताने इसमें अपना नाम भी ध्वनित किया है । इस तरहके नमस्कारात्मक गाथा-श्लोक आदि और भी अनेक ग्रन्थोंमें मिलते हैं; जिनमें किसी तीर्थंकर आदिको नमस्कार किया है और साथ ही अपना नाम भी ग्रन्थकर्त्ताओंने ध्वनित कर दिया है । नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्तीका यह गाथार्ध सभीको याद होगा—

'विमलवरणेमिचंदं तिहुवणचंदं णमस्सामि ।'

इसी तरह सोमदेव आचार्यने नीतिवाक्यामृतके प्रारंभमें लिखा है—'सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवं । सोमदेवमुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे ।' इसकी टीकामें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कह दी गई है कि ग्रन्थकर्त्ताने इसमें सोम अर्थात् चन्द्रप्रभका स्तवन किया है और साथ ही अपना नाम भी ध्वनित कर दिया है । गरज यह कि 'यतिवृषभं' विशेषणमें ग्रन्थकर्त्ताने अपना नाम भी ध्वनित किया है ।

तीसरी गाथामें कहा है कि "मैंने यह ग्रन्थ प्रवचनशक्तिसे प्रबुद्ध होकर धर्मकी प्रभावनाके लिए बनाया है । इसे बहुश्रुत आचार्य शुद्ध करें ।" अपना नाम प्रकट न किया होता तो इस गाथामें यह न कहा जाता कि 'मैंने' इस ग्रन्थको बनाया है । इससे मालूम होता है कि इसके पहले ग्रन्थकर्त्ता अपना नाम प्रकट कर चुके हैं और वह नाम 'यतिवृषभ' ही हो सकता है ।

अब यह देखना चाहिए कि, यतिवृषभाचार्यका समय क्या है । इन्द्रनन्दिके ग्रन्थसे तो इसका कुछ निश्चय हो नहीं सकता है । क्योंकि यतिवृषभने जिन गुणधर आचार्यके शिष्योंसे पढ़ा था, उनका समयादि इन्द्रनन्दिको मालूम ही नहीं था । वे इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार करते हैं:—

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः ।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ॥

ऐसी दशामें यतिवृषभका निश्चित समय मालूम करना बहुत कठिन है । साधारण दृष्टिसे देखनेसे इसमें अन्य किसी ग्रन्थके 'उक्तं च' श्लोकादि भी नहीं मिले, जिससे समयनिर्णयमें कुछ सहायता मिलती । हाँ यह बात अवश्य कही जा सकती है कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ संस्कृत लोकविभागसे पहलेका बना हुआ है । क्यों कि उसमें इसकी पचासों गाथायें उद्धृत की गई हैं । पर प्राकृत लोकविभागसे पहलेका, अर्थात् शक संवत् ३८० के पूर्वका, यह ग्रन्थ कदापि नहीं हो सकती । क्योंकि इसमें जिस कल्कि-राजाका वर्णन है, वह इसी ग्रन्थके समयनिरू-

पणके अनुसार शक संवत् ३८० के बाद हुआ है।

इस ग्रन्थके अनुसार कल्किकी मृत्यु वीर-निर्वाणके एक हजार वर्ष बाद हुई है और शकके ४६१ वर्ष पहले अथवा ६०५ वर्ष पहले वीरनिर्वाण हुआ है। यदि इन दो मतोंमेंसे हम दूसरे मतको ठीक समझें, तो शक संवत् ३९५ में कल्किकी मृत्यु माननी पड़ेगी। ऐसी दशामें इस ग्रन्थको प्राकृत लोकविभागके पहलेका बना हुआ नहीं मान सकते। क्यों कि वह शक ३८० में बना है।

कितने पीछे बना है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर ऐसा मालूम होता है कि कल्किके दश बीस वर्षोंके बाद ही यह बना होगा। क्योंकि एक तो इसमें कल्किके बादके बहुत थोड़े ही समयका वर्णन है, और उसमें भी कल्किके पुत्र अजितंजयके दो वर्षतक धर्म-राज्य करनेका उल्लेख है। यदि यह दो वर्षतक धर्मराज्य करनेकी बात बहुत पुरानी होती, तो उसे लोग भूल ही गये होते—ग्रन्थकर्त्ताको भी उसका पता न चलता। दूसरे अजितंजयके बहुत पीछे यदि यह ग्रन्थ बना होता तो यह संभव नहीं जान पड़ता कि, इतने बड़े भारी ग्रन्थमें उसके बादके अन्य राजाओंका थोड़ा बहुत उल्लेख न किया जाता।

इन्द्रनन्दिने यद्यपि यतिवृषभका समय नहीं बतलाया है, तथापि उन्होंने जिस क्रमसे वर्णन किया है, उससे कल्किके दश पाँच वर्ष पीछे यतिवृषभका समय होना, असंभव नहीं जान पड़ता। उनके कथनानुसार वीरनिर्वाण संवत् ६८३ तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही है। उसके बाद अर्हद्बलि आचार्य हुए। उनके कुछ समय बाद (तत्काल ही नहीं) माघनन्दि हुए। उनके स्वर्गवासी होने पर कुछ समय बाद धरसेन आचार्य हुए। इन्होंने भूतबलि पुष्पदन्त-को पढ़ाया। भूतबलिने जिनपालितको पढ़ाया। फिर एक गुणधर नामके आचार्य हुए। उनके शिष्य नागहस्ति आर्यमंक्षुसे यति-वृषभने पढ़ा। यदि इन सबके होनेमें ३२५ वर्ष लगभग मान लिये जायँ तो (६८३+३२५=) १००८ वीरनिर्वाणके लगभग यति-वृषभका समय ठीक हो सकता है। इन्द्रनन्दि-को गुणधर और धरसेन आचार्यका पूर्वक्रम मालूम नहीं था, इसलिए ये आचार्य असंभव नहीं जो अंगज्ञानके नष्ट होनेके और अर्हद्बलि, माघनन्दि आदिके बहुत बाद—लगभग ३०० वर्ष बाद—हुए हों।

यदि यह न भी माना जाय—यद्यपि न माननेका कोई प्रबल कारण नहीं दिखलाई देता—तो भी इसमें तो सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ प्राचीन है। इसकी रचनाशैली ही निराली है। पिछले समयके ग्रन्थोंकी रचनाशैलीसे वह नहीं मिलती। हमें आशा है कि यदि इस ग्रन्थका बारीकीसे अध्ययन किया जायगा, जिसके लिए अभी हमारे पास समय नहीं है, तो इसके भीतरसे ही ऐसे प्रमाण उपलब्ध हो सकेंगे, जिनसे इसकी प्राचीनता और भी स्पष्ट हो जायगी। आश्चर्य नहीं जो इसके बननेका ठीक समय भी निर्णीत हो जाय।

इस ग्रन्थके अन्तमें जो कुन्थुनाथादि तीर्थ-करोंका स्तवन किया गया है, उसमें वीरभगवा-न्के स्तवनकी गाथा यह है:—

एस सुरासुरमणुसिंदवंदियं धोदघादिकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ ७७॥

पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि यही गाथा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ प्रवचन-सारकी प्रारंभिक मंगलाचरणगाथा है। यदि त्रिलोकप्रज्ञप्तिके कर्ता यतिवृषभ ही हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि, प्रवचनसारमें यह गाथा इसी ग्रन्थपरसे ले ली गई है। क्यों कि इन्द्रनन्दिके

कथनानुसार कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभसे पीछे हुए हैं । यतिवृषभके बाद ही उन्होंने सिद्धान्त-ग्रन्थोंकी टीका लिखी है । कुन्दकुन्दका समय जो विक्रमकी पहली शताब्दिमें माना जा रहा है, वह हमारी समझमें भ्रम है । इस मानताकी सत्यताके विषयमें भट्टारकोंकी बे-सिरपैरकी पट्टावलियोंके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता । त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें यह गाथा 'उद्धृत' नहीं जान पड़ती । क्योंकि वहाँ यह तीर्थकरोंके क्रमागत स्तवनमें कही गई है। परन्तु इस विषयमें अधिक जोर देकर कोई भी बात नहीं कही जा सकती । क्योंकि प्रवचनसार और त्रिलोकप्रज्ञप्ति दोनोंकी ही रचनाका समय सन्दिग्ध है ।

हरिवंशपुराणमें पालक आदि राजाओंका जो इतिहास दिया है, हमारी समझमें वह त्रिलोकप्रज्ञप्तिपरसे ही लिया गया है । त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी वे गाथायें जिनसे पालक आदि राजाओंका इतिहास मालूम होता है, यहाँ उद्धृत की जाती हैं और उनका भावार्थ भी लिख दिया जाता है । प्राचीन इतिहासके अन्वेषकोंके लिए ये गाथायें बहुत उपयोगिनी सिद्ध होंगी ।

इन गाथाओंका सिलसिला महावीर भगवान्के निर्वाणके बादसे शुरू होता है ।

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी ।
जादो तस्सिं सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो ॥६६॥

तंमि कदकम्मणासे जंबूसामित्ति केवली जादो ।
तत्थ वि सिद्धपवण्णे, केवलिणो णत्थि अणुवद्धा ६७

वासट्ठी वासाणि गोदमपहुदीण णाणवंताणं ।
धम्मपयट्टणकाले परिमाणं पिण्डरूवेण ॥ ६८ ॥

अर्थ—जिस दिन श्रीवीर भगवान्का मोक्ष हुआ, उसी दिन गोतम गणधरको परम ज्ञान या केवलज्ञान हुआ और उनके सिद्ध होने पर सुधर्मा स्वामी केवली हुए । उनके कृतकर्मोंके नाश कर चुकने पर जम्बू केवली हुए उनके बाद फिर कोई केवली नहीं हुआ । इन गोतम आदि केवलियोंके धर्मप्रवर्तनका एकत्रित समय ६२ वर्ष है ॥ ६६–६८ ।

कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो ।
चरणरिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधाणो य ॥ ६९ ॥
पंणसमणेसु चरिमो वइरजसो णाम ओहिणाणिस्स ।
चरिमो सिरि णामो सुदविणयसुसीलादिसंपन्नो ॥७०॥
मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य ।
तत्तो मउडधरादो पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥ ७१ ॥

अर्थ—केवलज्ञानियोंमें सबसे अन्तिम श्रीधर[1] हुए जो कुण्डलगिरिसे मुक्त हुए, और चारण ऋद्धिके धारक ऋषियोंमें सबसे अन्तिम सुपार्श्वचन्द्र हुए । इसी तरह पाँच[2] श्रमणोंमें सबसे अंतिम वज्रयश हुए और अवधिज्ञानियोंमें श्रुतविनयशीलादिसम्पन्न श्रीनामके मुनि । मुकुटधर राजाओंमें सबसे अन्तिम चन्द्रगुप्तने[3] जिनदीक्षा धारण की । इसके बाद किसी राजाने प्रवज्या या दीक्षा नहीं ग्रहण की ॥६९–७१॥

णंदी य णंदिमित्तो विदिओ अवराजिदं तई जाई ।
गोवद्धणो चउत्थो पंचमओ भद्दवाहुत्ति ॥ ७२ ॥
पंच इमे पुरिसवरा चउदसपुव्वी जगंमि विक्खादा ।
ते बारसअंगधरा तित्थे सिरिवड्ढमाणस्स ॥ ७३ ॥
पंचाणमेलिदाणं कालपमाणं हवेदि वाससदं ।
वीरंमिय पंचमए भरहे सुदकेवली णत्थि ॥ ७४ ॥

अर्थ—नन्दि[4], नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन

१ भगवान् महावीरके बाद केवल तीन ही केवलज्ञानी हुए हैं, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे । ऐसी दशामें यह समझमें नहीं आता कि यहाँ श्रीधरको क्यों अन्तिम केवली बतलाया, और ये कौन थे तथा कब हुए हैं । शायद ये अन्तःकृत केवली हों । २ मूलमें 'पंण समण ' शब्द है । मालूम नहीं, इसका क्या अर्थ है । ये कोई विशेष प्रकारके मुनि जान पड़ते हैं । ३ यदि यह ग्रन्थ छठी शताब्दिका बना हुआ हो, तो कहना होगा कि सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेके जो प्रमाण उपलब्ध हैं उनमें यह सबसे पुराना है । ४ श्रुतावतारमें नन्दिके स्थानमें विष्णु नाम लिखा है ।

और भद्रबाहु ये पाँच पुरुषश्रेष्ठ चतुर्दशपूर्वधारी कहलाये। ये द्वादशांगके ज्ञाता थे। इन पाँचोंका एकत्रित समय एक सौ वर्ष होता है। इनके बाद भरतक्षेत्रमें इस पंचम कालमें और कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ ॥ ७२–७४ ॥

पढमो विसाह णामो पुट्ठिल्लो खत्तिओ जओ णागो ।
सिद्धत्थो धिदिसेणो विजओ बुद्धिल्ल गंगदेवा य॥७५॥
एक्करसो य सुधम्मो दसपुव्वधरा इमे सुविक्खादा ।
पारंपरिउवगमदो तेसीदिसदं च ताणवासाणि ॥ ७६॥
सव्वे सु वि कालवसा तेसु अदीदेसु भरहखेत्तंमि ।
वियसंतभव्वकमला ण संति दसपुव्विदिवसयरा ॥७७॥

अर्थ—विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दशपूर्वके धारी विख्यात हुए। ये सब एकके बाद एक १८३ वर्षमें हुए। इन सबके कालवश होनेपर भरतक्षेत्रमें भव्य-रूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले दशपूर्वके धारक सूर्य फिर नहीं हुए ॥ ७५–७७ ॥

णक्खत्तो जयपालो पंडुअ धुवसेण कंस आइरिया ।
एक्कारसंगधारी पंच इमे वीरतित्थम्मि ॥ ७८ ॥
दोण्णिसया वीसजुदा वासाणं ताण पिंडपरिमाणं ।
तेसु अतीदे णत्थि हु भरहे एक्कारसंगधरा ॥ ७९ ॥

अर्थ—नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन, और कंस ये पाँच आचार्य ग्यारह अंगोंके धारक हुए। इनके समयका एकत्र परिमाण २२० वर्ष होता है। इनके बाद ग्यारह अंगका धारक और कोई नहीं हुआ।

पढमो सुभद्दणामो जसभद्दो तह य होदि जसबाहू ।
तुरियो य लोयणामो एदे आयारअंगधरा ॥ ८० ॥
सेसेक्करसंगाणि चोद्दस पुव्वाणमेक्कदेसधरा ।
एक्कसयं अट्ठारस वासजुदं ताण परिमाणं ॥ ८१ ॥
तेसु अदीदेसु तदा आचारधरा ण होंति भरहंमि ।
गोदममुणि पहुदीणं वासाणं छस्सदाणि तेसीदी ॥८२॥

अर्थ—सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, और लोह ये चार आचार्य आचारांगके धारक हुए। शेष कुछ आचार्य ग्यारह अंग चौदह पूर्वके एक अंशके ज्ञाता थे। ये सब ११८ वर्षमें हुए। * इनके बाद भरतक्षेत्रमें कोई आचारांगधारी नहीं हुआ। गोतमगणधरके बाद यहाँ तक ६८३ वर्ष हुए। यथाः—

६२ वर्षमें ३ केवलज्ञानी
१०० " " ५ श्रुतकेवली
१८३ " " ११ ग्यारह अंग और दशपूर्वधारी
२२० " " ५ ग्यारह अंगके धारी
११८ " " ४ आचारांगके धारी

———

६८३ छः सौ तिरासी वर्ष।

वीस सहस्सं ति सदा सत्तारस वच्छराणि सुदतित्थं ।
धम्मपयट्टणहेदू वोच्छिस्सदि कालदोसेण ॥ ८३ ॥
तेत्तियमेत्ते काले जंमिस्सदि चाउरण्णसंघाओ ।
अविणीदुम्मेधाविय असूयको तह य पाएण ॥ ८४ ॥
सत्तभयअट्ठमदेहिं संजुत्ता सल्लगारवत्तेएहिं ।
कलहपिओ रागट्ठो कूरो कोहालुओ लोहो ॥ ८५ ॥

अर्थ—(पंचमकाल २१००० वर्षका है। इसमें ६८३ वर्ष तक श्रुतज्ञान रहा, अतएव शेषके) २०३१७ वर्ष तक धर्मप्रवृत्तिका हेतुभूत श्रुत-तीर्थ कालदोषसे विच्छिन्न रहेगा। इतने समय तक चातुर्वर्ण संघ (मुनिसमूह) में प्रायः अविनीत, दुर्बुद्धि, ईर्षालु, सात भय आठ मदों और शल्यादिसे युक्त, कलहप्रिय, रागी, क्रूर, क्रोधी और लोभी मुनि उत्पन्न होंगे ॥ ८३–८५ ॥

---

* श्रुतावतार (इन्द्रनन्दिकृत) में सुभद्रादि चारों आचार्योंका ही समय ११८ वर्ष बतलाया है, उसमें अंग-पूर्वांशज्ञानियोंका समय शामिल नहीं मालूम होता। पर यहाँ उनका समय शामिल बतलाया है। श्रुतावतारमें अंशज्ञानियोंके विनयंधर, श्रीधर, शिवदत्त, अर्हद्दत्त ये चार नाम भी बतलाये हैं। पर इनका समय जुदा नहीं दिया है। इससे जान पड़ता है कि इनका समय उन ११८ वर्षोंमें ही शामिल है।

वीरजिणं सिद्धिगदे चउसद इगिसट्ठि वास परिमाणो।
कालंमि अदिक्कंते उप्पणो एत्थ सगराओ ॥ ८६ ॥
अहवा वीरेसिद्धे सहस्सणवकंमि सगसयब्भहिये।
पणसीदिंमि यतीदे पणमासे सगणिओ जादा ॥८७॥

(पाठान्तरं)

चोद्दस सहस्स सग सय ते णउदी वासकालविच्छेदे।
वीरेसरसिद्धीदो उप्पण्णो सगणिओ अहवा ॥ ८८ ॥

(पाठान्तरं)

णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास सदेसु पंचवरिसेसु।
पणमासेसु गदेसुं संजादो सगणिओ अहवा ॥ ८९ ॥

अर्थ—वीर भगवानके मोक्षके बाद जब ४६१ वर्ष बीत गये, तब यहाँ पर शक नामका राजा उत्पन्न हुआ। अथवा भगवानके मुक्त होनेके बाद ९७८५ वर्ष ५ महीने बीतने पर शक राजा हुआ। (यह पाठान्तर है।) अथवा वीरेश्वरके सिद्ध होनेके १४७९३ वर्ष बाद शक राजा हुआ। (यह पाठान्तर है।) अथवा वीर भगवानके निर्वाणके ६०५ वर्ष और ५ महीने बाद शक राजा हुआ॥ ८६–८९॥

णिव्वाणगदे वीरे चउसद इगिसट्ठि वासविच्छेदे।
जादो च सगणरिंदो रज्जं वस्सस्स दुसय वादाला ९३

दोण्णिसदा पणवण्णा गुत्ताणं चउमुहस्स वादालं।
वस्सं होदि सहस्सं केई एवं परूवंति ॥ ९४ ॥

अर्थ—वीरनिर्वाणके ४६१ वर्ष बीतने पर शक राजा हुआ और इस वंशके राजाओंने २४२ वर्ष राज्य किया। उनके बाद गुप्तवंशके राजाओंका राज्य २५५ वर्षतक रहा और फिर चतुर्मुख (काल्कि) ने ४२ वर्ष राज्य किया। कोई कोई लोग इस तरह (४६१+२४२+२५५+४२=१०००) एक हजार वर्ष बतलाते हैं।

जं काले वीर जिणो णिस्सेयससंपयं समावण्णो।
तक्काले अभिसित्तो पालयणामो अवंतिसुदो ॥९५॥

पालकरज्जं सट्ठिं इगिसय पणवण्ण विजयवंसभवा।
चालं मुरुदयवंसा तीसं वंसा सु पुस्समित्तंमि ॥९६॥

वसुमित्त अग्गिमित्ता सट्ठी गंधव्वया विसयमेक्कं।
णरवाहणो य चालं तत्तो भच्छट्ठणा जादा ॥ ९७ ॥

भच्छट्ठणाण कालो दोण्णि सयाइं हवंति वादाला।
तत्तो गुत्ता ताणं रज्जे दोण्णियसयाभि इगितीसा ॥९८

तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउमुहो णामो।
सत्तरि वरिसा आऊ विगुणिय-इगिवीस रज्जत्तो ॥ ९९

अर्थ—जिस समय वीर भगवानका मोक्ष हुआ, ठीक उसी समय अवन्ति (चण्डप्रद्योत)-का पुत्र पालक नामक राजा अभिषिक्त हुआ उसने या उसके वंशने ६० वर्ष तक राज्य किया, उसके बाद १५५ वर्षतक विजयवंशके राजाओंने,

---

* इन गाथाओंसे मालूम होगा कि इस समयसे लगभग १२०० वर्ष पहले भी महावीर भगवानके निर्वाणकालके विषयमें सन्देह था। एक मत था कि उनका निर्वाण शकसे ४६१ वर्ष पहले हुआ है और दूसरा था कि नहीं ६०५ वर्ष पहले हुआ है। (त्रैलोक्यसार और हरिवंशपुराण आदिमें यह दूसरा मत ही माना गया है।) इनके सिवाय तीसरे और चौथे मत भी थे जो बहुत ही विलक्षण थे। उनके विषयमें तो कुछ कल्पना ही नहीं की जा सकती। उनके अनुसार शकसे हजार पाँचसौ नहीं, किन्त नौ हजार और चौदह हजार वर्ष पहले भगवानका निर्वाण हुआ था! और बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि यह बात उस समय एक बड़े भारी ग्रन्थमें भी उल्लेख करने योग्य समझी जाती थी। जो लोग उपलब्ध जैनग्रन्थोंको भगवानकी साक्षात् दिव्यध्वनिकी निर्भ्रान्त 'कापी' समझते हैं और उनमें जरासा भी सन्देह करनेको स्थान नहीं पाते हैं, उन्हें इस मतभेद पर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए।

क ल्कि राजा जैनधर्मका बहुत बड़ा शत्रु था। यह बात हिन्दुओंके पुराणोंसे और जैनग्रन्थोंसे सिद्ध होती है। आश्चर्य नहीं जो उसीकी कृपासे जैन-साहित्य नष्ट किया गया हो और जैनधर्मके मुख्य प्रदेशोंमेंसे जैनधर्म निर्वासित कर दिया गया हो। इसीसे तो जैनधर्मका छठी शताब्दिसे पहलेका साहित्य बहुत ही कम नाम मात्रको मिलता है। विद्वानोंको इस विषयमें कुछ अधिक प्रकाश डालना चाहिए।

४० वर्ष तक मुरुंड्य (मौर्य ?) वंशने और ३० वर्ष तक पुष्यमित्रने राज्य किया । फिर ६० वर्ष तक वसुमित्र अग्निमित्रने, १०० वर्ष तक गन्धर्व राजाओंने और ४० वर्ष तक नरवाहन या नहपान राजाने राज्य किया । इसके बाद भ्रत्यान्ध्रराजा हुए । इन भ्रत्यों-का राज्य २४२ वर्ष तक रहा । इनके बाद गुप्तोंका राज्य २३१ वर्ष तक रहा और तब कल्कि उत्पन्न हुआ । यह इन्द्रका पुत्र था और चतुर्मुख इसका नाम था । वह ७० वर्ष तक जिया और ४२ वर्ष तक उसने राज्य किया । इस तरह भी सब मिलाकर (६०+१५५+४०+३०+६०+१००+४०+२४२+२३१+४२= १०००) एक हजार वर्ष होते हैं ।

आचारंगधरादो पणहत्तरिजुत्तदुसयवासेसुं ।
बोलीणेसुं बद्धो पट्टो कक्कीस णरवइणो ॥ १०० ॥

अर्थ—आचरांगधारीके बाद २७५ वर्ष बीतने पर कल्कि राजा पट्ट पर बैठा । आचारांग-धारीका अस्तित्व वीर नि० संवत् ६८३ तक था । उसमें २७५ जोड़नेसे ९५८ हुए । इसमें ४२ वर्ष कल्किके राज्यके मिलानेसे पूरे १००० हो जाते हैं ।

---

१ ग्रन्थकर्त्ताको जान पड़ता है, यही मत मान्य है कि शकसे ४६१ वर्ष पहले भगवान्का निर्वाण हुआ था । २ हरिवंशपुराणमें जो इसी अभिप्रायके श्लोक हैं और जो हमारा विश्वास है कि, इसी ग्रन्थसे अनुवाद किये गये हैं, मुरुदयका अनुवाद मुरुण्ड किया गया है । ३ मूलमें 'गन्धव्व' शब्द है जिसकी छाया 'गन्धर्व' होती है, पर हरिवंशपुराणके कर्त्ताने 'गर्दभ' मानकर इसके पर्यायवाची शब्द 'रासभ' को इन राजाओंके लिए प्रयुक्त किया है ।

१ हरिवंशपुराणमें 'भच्छट्ठाणं' का अनुवाद 'भट्टवाणस्य' किया है; परन्तु वह ठीक नहीं मालूम होता । इस शब्दसे ग्रन्थकर्त्ताका मतलब आन्ध्रभृत्य राजाओंसे जान पड़ता है । ये बहुत प्रसिद्ध राजा हुए हैं । 'भच्छट्ठाणं' शब्द माननेसे उसका अनुवाद 'भृत्यान्ध्राणां' किया जा सकता है ।

अह साहियाण कक्की णियजोग्गो जणपदे पयत्तेण ।
सुक्कं जाचदि लुद्धो पिंडं जावताव समणाओ ॥१०१॥
दाऊणं पिंडग्गं समणा कालोय अंतराणं पि ।
गच्छंति ओहिणाणं उप्पज्जइ तेसु एक्कंपि ॥ १०२ ॥
अह कोवि असुरदेवा ओहीदो मुणिगणाण उवसग्गं ।
णादूणं तक्की मारेदिहु धम्मदोहिंति ॥ १०३ ॥
कक्किसुतो अजिदंजय णामो रक्खंति णमादि तच्चरणे ।
तं रक्खदि असुरदेओ धम्मे रज्जं करेज्जंति ॥ १०४ ॥
तत्तो दोवे वासो सम्मं धम्मो पयट्टदि जणाणं ।
कमसो दिवसे दिवसे कालमहप्पेण हाएदे ॥ १०५ ॥
एवं वस्स सहस्से पुहकक्की हवेइ इक्कक्को ।
पंचसयवच्छरेसुं एक्केक्को तहय उवकक्की ॥ १०६ ॥

अर्थ—जब कल्किने अपने योग्य देशोंको यत्नपूर्वक जीत लिया, तब वह अतिशय लुब्ध बनकर जिस तिस श्रमण (जैनमुनि) से शुल्क या कर माँगने लगा । इस पर श्रमण अपना पहला ग्रास दे देकर भोजनमें अन्तराय हो जानेसे जाने लगे । उन मुनियोंमेंसे किसी एकको अवधिज्ञान हो गया । उधर कोई असुर—अवधिज्ञानसे यह जानकर कि मुनियोंको उपसर्ग हो रहा है—आया और उसने धर्मद्रोही कल्किको मार डाला । कल्कि-का अजितंजय नामका पुत्र था, उसको असुरने बचा दिया और उससे धर्मराज्य कराया । इसके बाद दो वर्ष तक लोगोंमें धर्मकी प्रवृत्ति अच्छी तरह होती रही; परन्तु फिर दिनों दिन कालके माहात्म्यसे उसकी हीनता होने लगी । आगे इसी तरह प्रत्येक एक एक हजार वर्षमें एक एक कल्कि और प्रत्येक पाँच पाँच सौ वर्षमें एक एक उपकल्कि होगा ॥ १०१–१०६ ॥

क्या ही अच्छा हो यदि यह प्राचीन ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो जाय । यदि कोई धर्मात्मा सज्जन सहायता करें तो यह 'माणिकचन्द-ग्रन्थ-माला' में निकाला जा सकता है । लगभग डेढ़ हजार रुपयेमें इस ग्रन्थका उद्धार हो सकता है ।

बाबाजीका स्वप्न ।

(लेखक, श्रीयुत ठाकुरदासजी विद्यार्थी ।)

(१)

सन्ध्यासमय एक बाबाजी, सायं-कृत्य समापन कर;
लुढ़क रहे निद्राभिभूत हो, एक कूपके तट ऊपर ।
लगे देखने स्वप्न-हो गया ब्याह एक युवतीके संग;
हुए व्यतीत बहुत दिन इस विधि, रहे रँगे रमणीके रंग ।

(२)

वर्द्धमान इस प्रणय-वृक्षका, एक मधुर फल पुत्र हुआ;
इस सुतसे विभक्त भी उनमें, प्रणय-वेग नित वृद्ध हुआ ।
शिशु जब दबने लगा बीचमें, लेटे थे वे दोनों ओर;
कहने लगी कान्तसे कान्ता-"जरा खिसक जाओ उस ओर"।

(३)

लेटे लेटे लगे खिसकने, वहाँ कूपमें पतित हुए;
अस्थि-योग व्युच्छिन्न हुए सब, क्षणमें जीवनरहित हुए ।
प्रबल वासनायें मानवकी, सोतेमें भी पास रहें ।
करें अनिष्ट अनन्त, अन्तमें, उसका सत्यानाश करें ॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें कल्किका वर्णन ।

[लेखक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ।]

कल्कि राजाके विषयमें दिगम्बर जैनग्रंथोंमें जो कुछ लिखा हुआ है, उसका परिचय, पाठकोंको इसी अंकमें प्रकाशित हुए श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवालके लेखसे और 'लोकविभाग तथा त्रिलोकप्रज्ञप्ति' शीर्षक संपादकीय लेखसे हो जायगा । प्रेमीजीकी इच्छा हुई कि श्वेताम्बरसंप्रदायके ग्रन्थोंमें इस विषयमें क्या लिखा गया है, सो भी पाठकोंको मालूम हो जाना चाहिए, अतएव इस लेखके लिखनेकी आवश्यकता हुई ।

कल्किके वर्णनवाले जितने श्वेताम्बरीय ग्रंथ हमारे देखनेमें आये हैं, उनमें सबसे पुराना ग्रन्थ 'महावीरचरियं' विक्रमसंवत् ११४१ का बना हुआ है । यह प्राकृत भाषामें है और इसके रचयिता अम्बदेव उपाध्यायके शिष्य नेमिचन्द्र आचार्य हैं । इसके अंतभागमें, गौतम गणधरके पूछने पर श्रमण भगवान् महावीरदेव पंचमकालका स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं:—

छहिं वासाणसएहिं पंचहिं वासेहिं पंचमासेहिं ।
मम निव्वणगयस्स उ उप्पज्जिस्सइ सगो राया ॥
तेरसवाससएहिं नवुत्तरेहिं सगाउ कुसुमपुरे ।
होही कक्की पन्ते कुलम्मि केउव्व दुट्टप्पा ॥

अर्थात्—"हे गोतम, मेरे निर्वाणकालके बाद ६०५ वर्ष और ५ महीने बीतने पर शक राजा उत्पन्न होगा और उसके १३०९ वर्ष

बाद (महावीर निर्वाणसे १९१४ वर्ष बाद) कुसुमपुर (पाटलीपुत्र—पटना) में, प्रान्त (नीच) कुलमें कल्कि नामका एक दुष्टात्मा जन्म लेगा। " इसके बाद कल्किका बहुतसा वर्णन दिया है जिसका सार यह है कि कल्कि जन्मसे ही अतिशय क्रूर, निर्दय, घातक और लोभी होगा। उसके जन्मसमयमें, मथुरामें राम और कृष्णके मंदिर सहसा गिर पड़ेंगे ! देशमें सर्वत्र ही चोर, राजविरोध, राज्यभय, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि आदि भयंकर उपद्रव मचेंगे। वह १८ वर्ष तक कुमारावस्थामें रहेगा और उतने ही समयतक जनतामें महामारी प्रचलित रहेगी। फिर वह प्रचण्ड राजा बनेगा। एक दिन वह शहरमें घूमता हुआ पाँचस्तूपोंको देखेगा और लोगोंसे उनका हाल पूछेगा। लोग कहेंगे कि, पूर्वमें यहाँपर नन्द नामका एक अत्यंत समृद्धिशाली राजा हो गया है। उसके पास अनन्त सुवर्णराशि थी। ये स्तूप उसीके बनवाये हुए हैं। इनके भीतर उसीकी गाढ़ी हुई सुवर्णराशि संरक्षित है। उसे कोई निकाल नहीं सकता। यह सुनकर वह उन स्तूपोंको खुदवा डालेगा और उनमेंसे उस सुवर्णराशिको निकाल लेगा। इसके बाद लोभके वशीभूत होकर वह और भी अनेक स्थानोंको खुदवायगा। अभिमानसे अन्धा होकर वह अन्य सब नृपतियोंको तृणवत् समझने लगेगा। कुछ दिनोंके बाद जब वह अपने नगरकी जमीनको खुदवाने लगेगा, तब उसमेंसे एक पाषाणकी गऊ निकलेगी और वह भिक्षाके लिए जाते हुए जैन साधुओंको अपने सींगों द्वारा मारनेको दौड़ेगी ! यह देखकर जो स्थविर साधु होंगे वे सोचेंगे कि भविष्यमें यहाँ पर बड़ा भारी जलोपसर्ग होगा, इस लिए इस प्रदेशको छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिए। ऐसा विचार कर कितने ही साधु तो अन्य प्रदेशोंमें चले जायँगे और कितने ही आहार, वसति और वस्त्रादिके लोभसे वहीं रह जायँगे और कहेंगे कि, कालके स्वभावसे और कर्मके प्रभावसे जो कुछ शुभ-अशुभ होना होगा, वह अवश्य ही होगा, उसे कौन रोक सकता है ? इसके बाद कल्कि तमाम धर्मोंके साधु-संन्यासियोंसे कर वसूल करेगा और अंतमें जैनसाधुओंसे भी कर माँगेगा। इस पर वे कहेंगे कि हे राजन् ! हम तो केवल भिक्षावृत्तिसे अपना जीवननिर्वाह करते हैं। हमारे पास 'धर्मलाभ' के सिवाय और क्या चीज है, जो आपको दी जाय ? इस पर भी जब वह कुछ ध्यान न देगा और उलटा क्रुद्ध होगा, तब नगर-देवता प्रकट होकर कहेगी, कि क्या तू मरना चाहता है, जो मुनियोंको इस प्रकार सता रहा है ? इससे वह बहुत भय-भीत होगा और मुनियोंके चरणोंमें पड़कर स्वकृत अपराधकी क्षमा माँगेगा। इसके बाद १७ दिनतक लगातार मूसल-धार जलवृष्टि होगी, जिससे गंगा और शोणनदके पूर आ जायँगे और उनमें सारा ही नगर बह जावेगा। एक प्रातिपद नामके आचार्य, कल्कि राजा, और थोड़ेसे नगर-निवासी लकड़ियोंके सहारे तैरकर बच जायँगे। इसके बाद नन्द राजाके स्तूपोंमेंसे मिले हुए धनके द्वारा कल्कि फिर एक नया नगर बसायगा और शान्तिके साथ नीतिपूर्वक राज्य करने लगेगा, अनेक जैनमंदिर बन जायँगे और साधु पूर्वकी ही तरह सर्वत्र सुखपूर्वक विचरने लगेंगे। धान्यका बहुत सुकाल हो जायगा। इस प्रकार वह ५० वर्ष तक सुराज्य करेगा। परन्तु जब उसकी मृत्यु निकट आ जायगी तब उसकी बुद्धि फिर बिगड़ेगी। पूर्वकी तरह फिर भी वह सारे भिक्षुकोंसे कर माँगेगा। जैनमुनियोंसे भी वह उनकी भिक्षाका षष्ठांश या छठा हिस्सा करके रूपमें लेना चाहेगा। जब मुनि कर देनेसे इन्कार करेंगे, तब वह उन्हें एक बाड़ेमें पशुओंकी तरह बन्द कर देगा। मुनिजन इस

संकटको देखकर शक्रेन्द्रका स्मरण करेंगे। तब शक्रका सिंहासन कंपित होगा, और इससे वह श्रमणसंघका संकट जानकर एक वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें कल्किके पास पहुँचेगा, और उसे श्रमणोंको छोड़ देनेके लिए तथा उनसे भिक्षाका षष्ठांश न माँगनेके लिए बहुत समझायगा। परन्तु अंतमें जब वह कुछ भी न सुनेगा, उलटा उसका ही तिरस्कार करनेके लिए उद्यत हो जायगा, तब शक्र उसे सिंहासन परसे नीचे पटक देगा और लातों तथा मुक्कोंसे मार मार कर मार डालेगा। इस प्रकार ८६ वर्षकी आयु पूरी करके वह नरकको प्रयाण करेगा। इसके बाद इन्द्र उसके दत्त नामक पुत्रको राजा बनाकर और जैनधर्मकी शिक्षा देकर स्वर्गलोकको चला जायगा। यह दत्त राजा नीतिपूर्वक राज्य करेगा, जैनधर्मकी प्रभावना करेगा और पृथ्वीको जैनमन्दिरोंसे मण्डित कर देगा। इसके बाद पाँचवें कालके अंततक धर्मकी निरंतर प्रवृत्ति रहेगी।

हेमचन्द्राचार्यकृत महावीरचरित्रमें[1] भी अक्षरशः इसी तरहका वर्णन है। इसमें भी कल्किका जन्मकाल महावीर-निर्वाणसे १९१४ वर्षबाद बतलाया है। विशेषमें उसके जन्मका महीना भी लिखा है, जो चैत्र है। इसके सिवाय उसके कल्कि, रुद्र और चतुर्मुख ये तीन नाम भी बतलाये हैं:—

मन्निर्वाणाद्गतेष्वब्दशतेष्वेकोनविंशतौ।
चतुर्दशाब्द्यां च म्लेच्छकुले चैत्राष्टमीदिने॥
विष्टौ भावी नृपः कल्की स रुद्रोऽथ चतुर्मुखः।
नामत्रयेण विख्यातः पाटलीपुत्रपत्तने॥

जिनप्रभसूरिने अपने 'विविध तीर्थकल्प'[2] के 'अपापा-कल्प' नामक प्रकरणमें भी कल्किका वर्णन लिखा है। इसमें ऊपरके दोनों चरित्रोंसे कहीं कहीं कुछ विशेषता है, पर जन्मकालमें कोई फर्क नहीं है। लिखा है, कि—

"एगूणवीसाएसु सएसुं चउद्दसाहिएसु वरिसेसु वइक्कंतेसु **चउदससयबायाले विक्कमकाले** पाडलिपुत्ते नयरे चित्तसुद्धट्ठमीए अद्धरत्ते विट्ठिकरणे मयरलग्गे वट्टमाणेसु **मगहसेणा**भिहाणस्स गिहे **जसदेवीए** उयरे चंडालकुले कक्किरायस्स जम्मो भविस्सइ। एगे एव माहंसु—

वीराओ इगुणवीसं सएहिं वरिसाण अट्ठावीसाए।
पंचमासेहिं होही चंडालकुलंमि कक्कि निवो॥"

इस अवतरणमें महावीरनिर्वाणके १९१४ वर्षके साथ विक्रमकाल १४४२ * का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया गया है, तथा कल्किके माता-पिताका नाम भी क्रमसे जसदेवी और मगहसेण लिखा है, जो पूर्वोक्त चरित्रोंमें नहीं है। इस कल्पमें यह भी लिखा है कि कल्कि अपने राज्यके ३६ वें वर्षमें भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका स्वामी बनेगा। (इनका स्वामी, जैनग्रन्थोंके अनुसार, वासुदेव और प्रतिवासुदेवके सिवाय, और कोई नहीं हो सकता।) कल्किके खजानेके धनका और सैन्यका परिमाण भी इसमें विशेष दिया हुआ है। यथा—

"तस्स य भंडारे नवनवइ सुवण्ण कोडाकोडीओ, चउदससहस्सा गयाणं, सत्तासीइं लक्खा अस्साणं, पंचकोडीओ पाइक्काणं हिंदु-तुरुक्क-काफराणं।"

अर्थात्—कल्किके पास ९९ कोटाकोटी मुहरें, १४ हजार हाथी, २७ लाख घोड़े तथा हिंदू, तुरुष्क और काफिरों(?)की ५ करोड़ पैदल सेना थी!

१ महावीरचरित्र वि० संवत् १२२० में बना है।

२ इसका रचना-समय विक्रम संवत् १३८७ है। यह दक्षिणके देवगिरि (दौलताबाद) नगरमें बनाया गया था।

* प्रचलित मतसे महावीरनिर्वाण संवत् १९१४ में विक्रम संवत् १४४४ होते हैं, पर यहाँ पर १४४२ लिखे हैं। मालूम नहीं यह २ वर्षका अंतर क्यों पड़ता है।—लेखक।

कल्किके बादके वर्णनमें लिखा है कि—

"दत्तो य राया बावत्तरिं वरिसाउ पडिदिणं जिणचेइयमंडियं महीं काही लोगं च सुहियं काहि त्ति । दत्तस्स पुत्तो जियसत्तू तस्स वि मेहघोसो । कक्कि अणंतरं महानिसीहं न वट्टिस्सइ । दोवाससहस्सट्ठिइणो भासरासीगहस्स पीडाए नियत्ताए य देवावि दंसणं दाहिंति । विज्जामंता य अप्पेणवि जावाइणा पहावं दसिस्संति, ओहिणाणं जाइसरणाइ भावाय किंचि पयट्टिस्संति । "

अर्थात्—कल्किका पुत्र दत्त ७२ वर्षतक लगातार जैनमंदिर बनवाता रहेगा और लोगोंको सुखी करेगा । उसका पुत्र जितशत्रु होगा और उसका मेघघोष । कल्किके बाद 'महानिशीथसूत्र' लुप्त हो जायगा । महावीरके निर्वाणकाल पर दो हजार वर्षकी स्थितिवाला 'भस्मरासी' नामका ग्रह है । उसके उतर जाने पर देव भी मनुष्योंको दर्शन देंगे, विद्या-मंत्र आदि भी अपना प्रभाव दिखावेंगे, और अवधिज्ञान तथा जातिस्मरण आदि ज्ञानके भाव भी कुछ कुछ मालूम पड़ेंगे ।

इसी प्रकारका कथन और और ग्रंथोंमें भी है । दिगम्बरीय कथन और श्वेताम्बरीय कथनमें वर्ण्यवस्तुमें अधिक अन्तर न होने पर भी समय-कथनमें बहुत अन्तर है । दिगम्बरग्रंथकार जब कल्किका आविर्भावमहावीर निर्वाणसे एक हजार वर्ष पीछे बताते हैं, तब श्वेताम्बर वीर-निर्वाणकी २० वीं शताब्दीमें । जिन जिन दिगम्बर ग्रन्थोंमें यह वर्णन है वे प्रायः महावीर-निर्वाणसे १००० वर्ष बादहीके बने हुए हैं, अतः उनके कर्ताओंका विश्वास था कि कल्कि हो चुका । परंतु जिन श्वेताम्बरीय ग्रंथोंका ऊपर उल्लेख किया है, वे ग्रंथ महावीरकी २० वीं शताब्दिके पूर्वके बने हुए हैं, अतः उनके रचयिताओंका विश्वास भविष्यत्के ऊपर अवलंबित था । यह बात खास तौरसे ध्यान देने योग्य है । पर साथ ही हम देखते हैं कि जब दिगम्बरीय कथनमें बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्त्व मौजूद है—जैसा कि श्रीयुत जायसवालजीने और प्रो० के. बी. पाठकने अपने लेखोंमें सिद्ध किया है—तब श्वेताम्बरीय कथनमें कोई तत्त्व नजर नहीं आता । महावीरकी १० वीं शताब्दिकी अपेक्षा २० वीं शताब्दि हमारे बहुत निकट है । उसके ऊपर केवल ५ ही शताब्दियोंकी तहें जमी हुई हैं और इन तहोंका हाल हमें बहुत कुछ ज्ञात है, अतः इनके नीचे दबी हुई चीजोंको हम सुलभताके साथ देख सकते हैं, अथवा यों कहें तो भी चल सकता है कि इनके नीचे ऐसी कोई मोटी चीज नहीं दबी हुई है जो हमसे अज्ञात हो। ऐसी दशामें, यह कहना पड़ेगा कि श्वेताम्बरीय ग्रंथोंका भविष्यकथन सत्य नहीं निकला । और इसी प्रकार दिगम्बरीय कथनके भी एक भागका वही हाल है । क्यों कि दिगम्बरग्रन्थोंके अनुसार पाँचवें कालके प्रत्येक १००० वर्षोंके अंतमें एक एक कल्कि और प्रत्येक ५०० वर्षोंके अंतमें एक एक उपकल्कि होगा । पर यह भविष्यद्वाणी ठीक नहीं उतरी । श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें कल्किका जो समय दिया है वह दिगम्बरीय ग्रंथोंके हिसाबसे दूसरे कल्किका समय है । अतः दिगम्बरीय कथनके अनुसार भी महावीरकी २० वीं शताब्दिमें एक कल्कि होना चाहिए ।

दिगम्बरग्रंथकारोंने महावीरकी १० वीं शताब्दिवाले जिस कल्किका वर्णन किया है, उसका जिक्र श्वेताम्बरोंने क्यों नहीं किया, यह बात भी खास तौरसे विचारने लायक है। कल्किका वर्णन करनेवाले, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, हरिवंश-पुराण और उत्तरपुराण आदि दिगम्बरीय ग्रंथ, महावीरचरित्र और तीर्थकल्प आदि श्वेताम्बरीय ग्रंथोंसे निश्चय ही पूर्वमें बने हैं, तब क्या हेमचन्द्राचार्य और जिनप्रभसूरिको उन दिग-

म्बरीय ग्रंथोंका पता न होगा, जो इस तरह उन्होंने महावीर-निर्वाणकी १० वीं शताब्दिके भूतपूर्व कल्किको २० वीं शताब्दिवाले भविष्य-कालमें ले जानेका प्रयत्न किया ? इस विषयमें हमने दो बातें सोची हैं; एक तो यह कि या तो दिगम्बरीय कथनका हाल श्वेताम्बरोंको मालूम ही नहीं था, और दूसरी यह कि मालूम होने पर भी उन्होंने ऐसा लिखा हो तो, इसमें यह कारण हो सकता है कि वह १० वीं शताब्दि-वाला काल उन आचार्योंके उतने ही निकट था जितना कि हमें २० वीं शताब्दिवाला है। जिस तरह हमें २० वीं शताब्दिके कल्किका कोई पता नहीं लगता और इस कारण उक्त कथन पर विश्वास नहीं आता, उसी तरह उन आचार्योंको भी १० वीं शताब्दिके कल्किका पता न लगा होगा और इस कारण उन्होंने उक्त दिगम्बरीय कथनको अविश्वस्त समझ कर कल्किके जन्मकी मर्यादाको १००० वर्ष और आगे बढ़ा कर उसे भविष्यके लिए रख छोड़ा होगा। मैंने एक ग्रन्थ ऐसा भी देखा है जिसमें कल्किके जन्मको वीरनिर्वाण १९१४ से उठाकर विक्रम संवत् १९१४ में फेंक दिया गया है ! और इस समय यदि यह ' क्यों ' और ' क्या ' का युग न उपस्थित हो जाता, तो उसकी मर्यादा और भी हजार पाँचसौ वर्ष बढ़ा दी जाती; परंतु अब तो लोग या तो कल्किका पता ही लगा लेना चाहते हैं, या उसके अस्तित्वको आकाशकुसुम ही बना देना चाहते हैं।

स्वराज्य-सोपान ।

(लेखक, पं० **रामचरित उपाध्याय** ।)

क्या स्वराज्य है खेल तमाशा ? उसको समझो टेढ़ी खीर,
पर तो भी वह मिल जावेगा, मनमें होना नहीं अधीर ।
उसका पूरा मूल्य आपने, क्योंकि अभी तक दिया नहीं,
या कि आपने समुचित उसका, यत्न अभी तक किया नहीं ॥ १ ॥

करके पूर्ण विचार-पर्वको, अब उद्योग-पर्व पढ़िए,
कच्छप-गतिको छोड़ सिंहकी गतिसे झट आगे बढ़िए ।
क्षुद्र विघ्न-पशु तुरत मार्गसे देख तुम्हें हट जावेंगे,
सुखके साधन सभी तुम्हारे, सम्मुख दौड़े आवेंगे ॥ २ ॥

जो भारतको योग्य न कहते, वे करते हैं भारी भूल,
या उनकी मति पर बैठी है, गाढ़ स्वार्थकी गन्दी धूल ।
राज-काजका सूत्र कभी क्या, हाथ हमारे रहा नहीं ?
क्या आर्योंका रक्त, पसीना देश-विदेशों बहा नहीं ? ॥ ३ ॥

मोह-विवश जो मतिके अन्धे, करते हैं भारत-उपहास
मनो उन्होंने नहीं पढ़ा है, कभी हमारा कुछ इतिहास ।

विविध विदेशोंके रक्षक थे, शिक्षक भी सबके थे हम,
दुखी दीन या पराधीन भी, कहिए तो कबके थे हम ? ॥ ४ ॥
सब कहते हैं हाथ उठाकर, अपने प्रिय स्वराज्यके हेतु
जो कुछ हो पर नहीं हटेंगे, नभमें भी बाँधेंगे सेतु।
कभी प्रकृतिकी धारा चलकर, बीच मार्गमें रुकी नहीं,
कभी आगकी लपट प्रकट हो, नीचे मुखका झुकी नहीं ॥ ५ ॥
दृढ़ आशा है बहुत शीघ्र ही, हम सबकी पूजेगी चाह,
पा स्वराज्यको भारत-मनकी, तुरत दूर होवेगी दाह।
काली घटा उठी विघ्नोंकी, तितर बितर हो जावेगी,
देश-विनाशक अज्ञोंकी भी, विकृति बुद्धि खो जावेगी ॥ ६ ॥
न्याय-तुला पर तुल जावेगा, भारत भी सन्देह नहीं,
किसी भाँति निःसीम निरन्तर रहती है अन्धेर कहीं ?।
जलमें अनल, उपल पर कैरव, कालचक्र उपजाता है,
अचला चलती है, मारुतका चलना भी रुक जाता है ॥ ७ ॥
यदि स्वराज्यका रिपु स्वराज्य ही, हो जावे परवाह नहीं,
जो चाहे सो मोह-नींदमें, सो जावे परवाह नहीं।
ग्रीष्म दिवाकर उदित हुआ है, तारे नहीं रहे तो क्या ?
सिंह-समूह बना है यदि, मृग-सारे नहीं रहे तो क्या ? ॥ ८ ॥
अपनी वस्तु चाहते हम हैं कौन टोकनेवाला है ?
जैसे होगा उसको लेंगे, कौन रोकनेवाला है ?।
भिक्षा नहीं माँगते हम हैं जा कर कभी किसीके पास,
न्याय चाहते हैं हम दृढ़ हो, हो सकते हैं नहीं हताश ॥ ९ ॥
हम भी मानव हैं मानवता हममें भी है भरी हुई,
इसी लिए ही चाह हमारी अभी नहीं है मरी हुई,
क्यों स्वराज्य या राज्य प्राप्त कर, सभी मनुज आनन्द करें ?
विफलमनोरथ हो हम ही क्यों, जलती जलती आह भरें ?॥१०॥
क्यों अनीतिको करें कभी हम अन्यायी क्यों कहलावें ?
धर्म-नीतिके लिए भले ही सुख पावें या मर जावें।
क्यों स्वराज्य हमको न मिलेगा, क्यों न सत्य विजयी होगा ?
स्वाधीना देवीका जगमें कौन नहीं प्रणयी होगा ? ॥ ११ ॥
स्वावलम्बके रंग-मञ्च पर ताण्डवनृत्य दिखावेंगे,
हम भारतको स्वर्ग बनाना सीखेंगे सिखलावेंगे।
फिर स्वराज्य तो स्वयं हमारे चरणों पर गिर जावेगा,
सत्साहस कर कौन जगतमें अपनी वस्तु न पावेगा ?॥ १२ ॥
जननी जन्मभूमिमें किसको प्रेम नहीं है अपरम्पार ?
कर्मवीरके लिए कौनसा कर्म हुआ है अगम अपार ?
सोते थे पर जग बैठे हम अब फिर कभी न सोवेंगे,
चाहे कुछ हो, निज स्वत्वोंको जीते कभी न खोवेंगे ॥ १३ ॥

विद्यासे, बलसे, वैभवसे, विमल बुद्धिसे सहितविवेक,
कर्मयोगको सिद्ध करेंगे, मनमें नहीं डरेंगे नेक।
आ स्वतन्त्रते मिल जा हमसे, सभी भाँति अब हैं तैयार,
चाहे प्रथम परीक्षा कर ले, हम न हटेंगे किसी प्रकार ॥ १४ ॥
जिससे दैन्य दूर होता है वही हमें मिल गई जड़ी,
जो मृतको जीवित करती है, निकट खड़ी है वही घड़ी।
क्यों मुख मोड़ें ? हम स्वराज्यको-प्राप्त करेंगे जैसे हो,
तन मनसे हम जिसे करें वह, काम नहीं फिर कैसे हो ? ॥ १५ ॥

द्रव्यसंग्रह ।

(समालोचना ।)

(ले०-श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार।)

आरासे श्रीयुत कुमार देवेंद्रप्रसादजीके आधिपत्यमें 'दि सैक्रेड बुक्स आफ दि जैन्स' अर्थात् 'जैनियोंके पवित्र ग्रंथ' नामकी एक ग्रंथमाला निकलनी आरंभ हुई है, जिसके जनरल एडीटर या प्रधान संपादक श्रीयुत प्रोफेसर शरच्चन्द्र घोशाल एम. ए. बी. एल., सरस्वती, काव्यतीर्थ, विद्याभूषण, भारती नामके एक बंगाली विद्वान् हैं। इस ग्रंथमालाका पहला ग्रंथ 'द्रव्यसंग्रह' जो अभी हालमें प्रकाशित हुआ है, हमारे सामने उपस्थित है। द्रव्यसंग्रह, श्रीनेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ जैनियोंका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें कुल ५८ पद्य हैं और जिस पर ब्रह्मदेवकी बनाई हुई एक विस्तृत संस्कृतटीका भी पाई जाती है। अनेक वार यह मूलग्रंथ हिन्दी तथा मराठी अनुवादसहित और एकबार उक्त संस्कृतटीका और उसके हिन्दीअनुवादसहित छपकर प्रकाशित हो चुका है। इस तरह पर इस ग्रंथके कई संस्करण निकल चुके हैं। परंतु अभीतक अँगरेजी संसारके लिए इस ग्रंथका दरवाजा बंद था—वह प्रायः इसके लाभोंसे वंचित ही था। उक्त ग्रंथमालाके उत्साही कार्यकर्ताओंकी कृपासे अब वह दरवाजा उक्त संसारके लिए भी खुल गया है, यह बड़े ही संतोष और हर्षकी बात है। ग्रंथके उपोद्घात (preface) में, उक्त ग्रंथमालाके प्रकाशित करनेका उद्देश्य और अभिप्राय प्रगट करते हुए, लिखा है कि इस "ग्रंथमालामें जैनियोंके उन संपूर्ण पवित्र ग्रंथोंको प्रकाशित करनेका विचार है जिन्हें जैनियोंके सभी सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं और उन्हें भी जो जैनियोंके किसी खास सम्प्रदाय द्वारा प्रमाण माने गये हैं।" साथ ही यह भी सूचित किया गया है कि "इस ग्रंथमालामें सभी जैनसम्प्रदायोंके पवित्र ग्रंथ विना किसी तरफदारी या पक्षपातके समान आदरके पात्र बनेंगे।" इस तरह पर, इस ग्रंथमालाके द्वारा जैनियोंके संपूर्ण उत्तम और प्रामाणिक ग्रंथोंको (प्राचीन संस्कृतटीकाओं तथा अँगरेजी अनुवादादि सहित प्रकाशित करके जैन अजैन सभीके लिए पक्षपातरहित अनुसंधान करनेके वास्ते, एक विशाल क्षेत्र तैयार करनेका अनुष्ठान किया गया है; जिससे अजैन लोक जैनियोंके तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जानकर और जैनी भाई अपने अपने संप्रदायके वास्तविक भेदों तथा उनके कारणोंको पहचानकर परस्परका अज्ञानजन्य मनोमालिन्य

विक सहधर्मिणी बनने लगें तो देशका बहुत कुछ उद्धार हो सकता है। अस्तु। ग्रंथमें एक १८ पेजका परिशिष्ट भी लगा हुआ है जिसमें (A) जिन और जिनेश्वर, (B) जैन देवता, (C) द्वीपायनकी कथा, (D) शब्द, (E) धर्म और अधर्मास्तिकाय, (F) ध्यान, इन सब बातोंके सम्बन्धमें कुछ जरूरी सूचनायें दी गई हैं। इस प्रकार द्रव्यसंग्रहके इस संस्कारणको एक उत्तम और उपयोगी संस्करण बनानेकी हर तरहसे चेष्टा की गई है। इसके तैयार करनेमें जो परिश्रम किया गया है वह निःसन्देह बहुत प्रशंसनीय है। और यह कहनेमें हमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि हिन्दीमें अभीतक इसकी जोड़का कोई संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। सब मिलाकर इस संस्करणकी पृष्ठसंख्या ३१८ है (३८१ नहीं, जैसा कि पहली सूचीके अन्तमें सूचित किया गया है)। मूल्य इस संस्करणका, पृष्ठ-नोटिससे साढ़े पाँच रुपये मालूम होता है; परन्तु किसी नोटिसमें हमने साढ़े चार रुपये भी देखा है। यह ग्रंथ एक दूसरे मोटे किन्तु हलके कागज पर भी छपा है। शायद वह मूल्य उसका हो। अस्तु। इस ग्रंथके प्रकाशित करनेमें जो अर्थ व्यय हुआ है, उसका छठा भाग रायसाहब बाबू प्यारेलालजी, वकील, चीफकोर्ट, देहलीने अपने पुत्र आदीश्वरलालके विवाहोत्सवकी खुशीमें प्रदान किया है और दूसरा छठा भाग करनालके रईस लाला मुन्शीलालजीकी धर्मपत्नी, अर्थात् देहरादूनके सरकारी खजानची ला० अजितप्रसादकी धर्मपत्नी श्रीमती चमेली देवीकी माताकी ओरसे दिया गया है। इन उदार व्यक्तियोंकी तरफ़से यह ग्रंथ ओरियंटल लायब्रेरियों और उन विद्वानोंको भेटस्वरूप दिया जाता है जो जैनफिलासोफी और जैनसाहित्यसे विशेष अनुराग रखते हैं, ऐसा इस ग्रंथके शुरूमें प्रकाशकद्वारा सूचित किया गया है।

इस प्रकार ग्रंथका साधारण परिचय देने अथवा सामान्यालोचनाके बाद अब कुछ विशेष समालोचना की जाती है, जिससे इस ग्रंथमालाके द्वारा भविष्यमें जो ग्रंथ निकलें उनके प्रकाशित करनेमें विशेष सावधानी रक्खी जाय और इस ग्रंथमें जो खास खास भूलें हुई हैं उनका निराकरण और सुधार हो सके:—

१ ग्रंथके अन्तमें एक पेजका शुद्धिपत्र लगा हुआ है। इसमें बिन्दु-विसर्ग और मात्रातककी जिन अशुद्धियोंको शुद्ध किया गया है उनके देखनेसे मालूम होता है कि ग्रंथका संशोधन बड़ी सूक्ष्म दृष्टिके साथ हुआ है और इस लिए उसमें कोई अशुद्धि नहीं रहनी चाहिए। परन्तु तो भी संस्कृत प्राकृतके पाठोंमें उस प्रकारकी अनेक अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। अँगरेजीमें सूत्रकृताङ्गको 'सूत्रकिताङ्ग' विष्णुवर्धनको 'विश्नुवर्धन,' संज्ञाको 'सञ्ज्ञ' भुवनवासीको 'भुवनबासी,' अनुप्रवेशको 'अनुप्रबेश' और आभ्यंतरको 'आब्यंतर' गलत लिखा है*। इस प्रकारकी साधारण अशुद्धियोंको छोड़कर कुछ मोटी अशुद्धियाँ भी देखनेमें आती हैं। जैसे पृष्ठ २ पर प्रमेयरत्नमालाके स्थानमें 'परीक्षामुख,' पृ० ३८ पर अप्रत्याख्यानकी जगह 'प्रत्याख्यान' और प्रत्याख्यानकी जगह 'अप्रत्याख्यान,' पृ० ४८ पर अजीवविषयको 'जीवविषय' गलत लिखा है। पृ० XXXIII पर पेज नं० X हवाला गलत दिया गया, पृ० XLV पर द्रव्यसंग्रहकी कुछ गाथाओंके नम्बर ठीक नहीं लिखे गये और पृ० XLI पर गोम्मटसारके 'जीवकांड' का संपादन पं० मनोहरलाल-

* देखो पृष्ठ नं० XII, XXVIII, XL, LIV, 57, 87.

जीके द्वारा सन १९१४ में, होना लिखा है जो ठीक नहीं; उसका संपादन पं० खूबचंदजीने सन् १९१६ में किया है । इन सब बातोंके सिवाय शुद्धिपत्रमें पृष्ठ XLV का जो संशोधन दिया है उसके द्वारा शुद्ध पाठको उलटा अशुद्ध बनाया गया है । क्योंकि द्रव्य-संग्रहके द्वितीय भागमें पुण्य पापकी जगह जीव, अजीवका कथन नहीं है । इतना होने पर भी संपूर्ण ग्रन्थ अपेक्षाकृत बहुत शुद्ध और साफ़ छपा है, यह कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता ।

२ ग्रंथके उपोद्घातमें दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार चार अनुयोगोंके नाम क्रमशः चरणानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग और द्रव्यानुयोग दिये हैं और लिखा है कि "चरणानुयोगको प्रथमानुयोग भी कहते हैं, क्योंकि वह अनुयोगोंकी सूचीमें सबसे पहले आता है ।" परन्तु यह लिखना बिलकुल प्रमाणरहित है । चरणानुयोगको प्रथमानुयोग नहीं कहते और न दिगम्बर संप्रदायमें उपर्युक्त क्रमसे चार अनुयोग माने ही गये हैं । रत्नकरंडश्रावकाचारादि ग्रंथोंसे प्रथमानुयोग और चरणानुयोगका स्पष्ट भेद पाया जाता है । उनमें प्रथमानुयोगसे अभिप्राय धर्मकथानुयोगसे है और चरणानुयोगको तीसरे नम्बर पर रक्खा है । इसी उपोद्घातमें 'चंद्रप्रज्ञप्ति' को द्वादशांगमेंसे एक अंग सूचित किया है, जो अंग न होकर एक ग्रंथका नाम है, अथवा दृष्टिवाद नामके अंगका एक अंशविशेष है ।

३ उपोद्घातमें एक स्थान पर, श्रीकुंदकुंदाचार्यके प्रवचनसारादि ग्रंथोंको उमास्वामीके तत्त्वार्थसूत्र और सिद्धसेनके सम्मतिप्रकरणसे पीछेके बने हुए ग्रंथ (Later works) लिखा है । परंतु बिना किसी प्रमाणके ऐसा लिखना ठीक नहीं । कुंदकुंदका अस्तित्व सिद्धसेनादिकसे पहले माना जाता है ।

४ प्रस्तावनामें, नेमिचंद्राचार्यके 'त्रिलोसार' का परिचय देते हुए, लिखा है कि "इस ग्रंथमें पृथ्वीके घूमनेसे दिन और रात् कैसे होते हैं, इस बातका कथन किया गया है":—"And there is a mention how night and day are caused by the motion of the earth." परंतु त्रिलोकसारमें पृथ्वीके घूमने आदिका कोई कथन नहीं है । उसमें सूर्यादिककी गतिसे दिन और रातका होना बतलाया है । अतः इस लिखनेको लेखक महाशयकी निरी कल्पना अथवा पश्चिमी संस्कारोंका फल कहना चाहिए ।

५ चामुंडरायने गोम्मटसार पर जो अपने कर्णाटकदेशकी भाषामें टीका लिखी थी उसका नाम, इस ग्रंथकी प्रस्तावनामें, 'वीरमार्तंडी' बतलाया कया है । साथ ही यह भी लिखा है कि "चामुंडरायकी उपाधियोंमेंसे एक उपाधि 'वीरमार्तंड' होनेसे उसने अपनी उस टीकाका नाम 'वीरमार्तंडी' रक्खा है, जिसका अर्थ है वीर मार्तंडके द्वारा रची हुई ।" परंतु इसके लिए कोई खास प्रमाण नहीं दिया गया । गोम्मटसारके कर्मकांडकी जिस अन्तिम गाथा (नं० ९७२) परसे यह सारी कल्पना की गई है उससे इसका भले प्रकार समर्थन नहीं होता । उसके 'सो राओ चिरकालं णामेण य वीर मत्तंडी' इस वाक्यमें 'वीरमार्तंडी' चामुंडरायका विशेषण है, जिसका अर्थ होता है 'वीरमार्तंड' नामकी उपाधिका धारक । श्रीयुत पण्डित मनोहरलालजीने भी अपनी टीकामें, जिसे उन्होंने संस्कृतादि टीकाओंके आधार पर बनाया है, ऐसा ही अर्थ सूचित किया है ।

६ इस ग्रंथके सम्पादक प्रोफेसर शरचंद्रजी

घोशालने अपने एक पत्रमें; जो सन् १९१६ के जैनहितैषीके छठे अंकमें मुद्रित हुआ है, चामुंडराय और नेमिचंद्रका समय ईसाकी ११ वीं शताब्दि प्रगट किया था, और गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके प्रतिष्ठित होनेका समय ईस्वी सन् १०७४ बतलाया था। इसके प्रत्युत्तरमें हमने कुछ प्रमाणोंके साथ उक्त समयको ईसाकी १० वीं शताब्दि सूचित करते हुए प्रोफ़ेसर साहबसे यह निवेदन किया था कि वे उस पर फिरसे विचार करें। यद्यपि प्रोफ़ेसर साहबने उक्त लेखका कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु इस ग्रंथकी प्रस्तावनासे मालूम होता है कि उन्होंने उस पर विचार जरूर किया है। और इसी लिए उन्होंने अपने पूर्वविचारको बदल कर हमारी उस सूचनाके अनुसार चामुंडरायका समय वही ईसाकी १० वीं शताब्दि, इस प्रस्तावनामें, स्थिर किया है। साथ ही इतना विशेष और लिखा है कि गोम्मटेश्वरकी मूर्ति ईस्वी सन् ९८० में, २ री अप्रैलको प्रतिष्ठित हुई है। आपके लेखानुसार इस तारीख (२ अप्रैल ९८०) में ज्योतिषशास्त्रानुसार वे सब योग पूरी तौरसे घटित होते हैं जो बाहुबलिचरित्रके 'कल्क्यब्दे षट्शताख्ये...' इत्यादि पद्यमें वर्णित हैं। अर्थात् दूसरी अप्रैल सन् ९८० को 'विभव' संवत्सर, 'चैत्र शुक्ल पंचमी' तिथि, रविवारका दिन, सौभाग्य योग और मृगशिरा नक्षत्र था। उसी दिन कुंभ लग्नमें यह प्रतिष्ठा हुई है। रही कल्कि संवत् ६०० की बात, सो उसके संबंधमें आपने यह कल्पना उपस्थित की है कि 'कल्क्यब्दे षट्शताख्ये' का अर्थ कल्कि संवत् ६०० के स्थानमें 'कल्किकी छठी शताब्दी' किया जाय, जिसके अनुसार कल्कि संवत् ५०८ उक्त ईस्वी सन् ९८० के बराबर होता है। कल्पना अच्छी की गई है और इसके माननेमें कोई हानि नहीं, यदि अन्य प्रकारसे सब योग पूर्णतया घटित होते हों। परन्तु ईस्वी सन् ९८० शक संवत् ९०२ के बराबर है। ज्योतिषशास्त्रानुसार शक संवत्में १२ जोड़कर ६० का भाग देनेसे जो शेष रहता है उससे प्रभव-विभवादि संवतोंका क्रमशः नाम मालूम किया जाता है। यथा:—

> " शकेन्द्रकालोऽर्कैयुतः कृत्वा शून्यरसैः हृतः ।
> शेषाः संवत्सरा ज्ञेयाः प्रभवाद्या बुधैः क्रमात् ॥"

इस हिसाबसे, शक संवत् ९०२ में १२ जोड़कर ६० का भाग देनेसे अवशेष १४ रहते हैं; और १४ वाँ संवत् 'विक्रम' है, जिससे शक संवत् ९०२ का नाम 'विक्रम' होता है, 'विभव' नहीं। 'विभव' संवत् दूसरे नम्बरपर है जैसा कि, ज्योतिषशास्त्रोंमें कहे हुए, 'प्रभवो विभवः शुक्लः' इत्यादि संवतोंके नामसूचक पद्योंसे पाया जाता है। ऐसी हालतमें, जब ईस्वी सन् ९८० में 'विभव' संवत्सर ही नहीं बनता, तब गणित करके अन्य योगोंके जाँच करनेकी जरूरत नहीं है। और इस लिए जबतक ज्योतिषशास्त्रके वे खास नियम प्रकट न किये जायँ जिनके आधार पर शक सं० ९०२ का नाम 'विभव' बन सके तथा अन्य योग भी घटित हो सकें, तब तक मिस्टर लेविस राइस आदि विद्वानोंके कथनानुसार यही मानना ठीक होगा कि गोमटेश्वरकी मूर्ति ईस्वी सन् ९७८ और ९८४ के मध्यवर्ती किसी समयमें प्रतिष्ठित हुई है।

७ प्रस्तावनामें, ब्रह्मदेवकी संस्कृतटीकाका परिचय देते हुए, लिखा है कि, यह टीका द्रव्यसंग्रहके कर्ता नेमिचंद्रसे कई शताब्दी बादकी बनी हुई है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया गया। सिर्फ, विक्रमकी १७ वीं शताब्दिमें बनी हुई स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें इस टीकाके कुछ अंश उद्धृत किये गये हैं, इतने

परसे ही उक्त निश्चय दृढ़ किया गया है, जो ठीक नहीं है। ऐसा करना तर्कपद्धतिसे बिलकुल गिरा हुआ है। इसके लिए कुछ विशेष अनुसंधानोंकी जरूरत है। अस्तु। ब्रह्मदेवने अपनी इस टीकाकी प्रस्तावनामें लिखा है कि, "यह द्रव्यसंग्रह नेमिचंद्रसिद्धान्तिदेवके द्वारा, भाण्डागारादि अनेक नियोगोंके अधिकारी सोम नामके राजश्रेष्ठिके निमित्त, आश्रमनाम नगरके मुनिसुव्रत चैत्यालयमें रचा गया है, और वह नगर उस समय धाराधीश महाराज भोजदेव कलिकालचक्रवर्तिसंबंधी श्रीपाल मंडलेश्वरके अधिकारमें था।" साथ ही यह भी सूचित किया है कि "पहले २६ गाथा प्रमाण लघु द्रव्यसंग्रहकी रचना की गई थी, पीछेसे, विशेष तत्त्वपरिज्ञानार्थ, उसे बढ़ाकर यह बृहद्द्रव्यसंग्रह बनाया गया है। प्रोफेसर साहबने ब्रह्मदेवके इस कथनको अस्वीकार किया है और उसके दो कारण बतलाये हैं—एक यह कि, खुद द्रव्यसंग्रहमें इस विषयका कोई उल्लेख नहीं है, तथा ग्रंथके अन्तिम पद्यमें ग्रंथका नाम 'बृहद्द्रव्यसंग्रह' न देकर 'द्रव्यसंग्रह' दिया है। और दूसरा यह कि, यदि इस कथनके अनुसार नेमिचन्द्रका अस्तित्व मालवाके राजा भोजके राजत्वकालमें माना जाय तो नेमिचंद्रका समय उस समयसे पीछे हो जाता है जो कि शिलालेखों और दूसरे प्रमाणोंके आधार पर इससे पहले सिद्ध किया जा चुका है (अर्थात् ईसाकी १० वीं शताब्दिके स्थानमें ११ वीं शताब्दि हो जाता है)। इन दोनों कारणोंमेंसे पहला कारण बहुत साधारण है और उससे कुछ भी साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। ग्रंथकर्ताके लिए ग्रंथमें इस प्रकारका उल्लेख करना कोई जरूरी नहीं है, खासकर ऐसे ग्रंथमें जो सूत्ररूपसे लिखा गया हो। लघु और बृहत् ये संज्ञायें एक नामके दो ग्रंथोंमें परस्पर अपेक्षासे होती हैं, परन्तु जब एक ग्रंथकार अपनी उसी कृतिमें कुछ वृद्धि करता है तो उसे उसका नाम बदलने या उसमें बृहत् शब्द लगानेकी जरूरत नहीं है। हाँ, ब्रह्मदेवकी तरह दूसरा व्यक्ति उसकी सूचना कर सकता है। रहा दूसरा कारण, वह तभी उपस्थित किया जासकता है, जब पहले यह सिद्ध हो जाय कि यह द्रव्यसंग्रह ग्रंथ उन्हीं नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका बनाया हुआ है जो गोम्मटसार ग्रंथके कर्ता हैं। प्रोफेसर साहबने द्रव्यसंग्रहको उक्त नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकी कृति मानकर ही यह दूसरा कारण उपस्थित किया है। परंतु ग्रंथभरमें इस बातके सिद्ध करनेकी कोई चेष्टा नहीं की गई (जिसकी बहुत बड़ी जरूरत थी) कि यह ग्रंथ वास्तवमें उक्त सिद्धान्तचक्रवर्तीका ही बनाया हुआ है। कोई भी ऐसा प्राचीन ग्रंथप्रमाण नहीं दिया गया, जिसमें यह ग्रंथ गोम्मटसारके कर्ताकी कृतिरूपसे स्वीकृत हुआ हो, और न यह बतलाया गया कि द्रव्यसंग्रहके कर्ताका समय कुछ पीछे मान लेनेसे कौनसी बाधा उपस्थित होती है। ऐसी हालतमें ब्रह्मदेवके उक्त कथनको सहसा अप्रमाण या असत्य नहीं ठहराया जा सकता। ब्रह्मदेवका वह कथन ऐसे ढंगसे और ऐसी तफ़सीलके साथ लिखा गया है कि, उसे पढ़ते समय यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि या तो ब्रह्मदेवजी उस समय मैजूद थे; जब कि द्रव्यसंग्रह बनकर तयार हुआ था, अथवा उन्हें दूसरे किसी खास मार्गसे इन सब बातोंका ज्ञान प्राप्त हुआ है। द्रव्यसंग्रहकी गाथाओंपरसे भी उसके पहले लघु और फिर बृहत् बननेकी कुछ कल्पना जरूर उत्पन्न होती है। इसके सिवाय संस्कृतटीकामें अनेक स्थानों पर नेमिचंद्रका सिद्धान्तिदेव नामसे उल्लेख किया गया है, 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' नामसे नहीं, और गोम्मटसारके कर्ता नेमिचंद्र 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' कहलाते हैं।

उन्होंने कर्मकांडकी एक गाथा (नंबर ३९७) में स्वयं अपनेको चक्रवर्ती प्रगट भी किया है। साथ ही, एक बात और भी नोट किये जानेके योग्य है और वह यह है कि द्रव्यसंग्रहके कर्ताने भावास्रवके भेदोंमें 'प्रमाद' को भी वर्णन किया है और अविरतके पाँच तथा कषायके चार भेद ग्रहण किये हैं। परंतु गोम्मटसारके कर्ताने 'प्रमाद' को भावास्रवके भेदोंमें नहीं माना और अविरतके (दूसरे ही प्रकारके) बारह तथा कषायके पच्चीस भेद स्वीकार किये हैं, जैसा कि दोनों ग्रंथोंके निम्न वाक्योंसे प्रगट है:—

मिच्छताविरदिपमादजोगकोहादओ थ विण्णेया।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥
—द्रव्यसंग्रह, पद्य ३०।

मिच्छत्तमविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति।
पण वारस पणवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥
—गोम्मटसार, कर्मकांड पद्य ॥ ७८६ ॥

एक ही विषय पर, दोनों ग्रंथोंके इन विभिन्न कथनोंसे ग्रंथकर्ताओंकी विभिन्नताका बहुत कुछ बोध होता है। इन सब बातोंके मौजूद होते हुए कोई आश्चर्य नहीं कि द्रव्यसंग्रहके कर्ता गोम्मटसारके कर्तासे भिन्न कोई दूसरे ही नेमिचंद्र हों। जैनसमाजमें नेमिचंद्र नामके धारक अनेक विद्वान् आचार्य हो गये हैं। एक नेमिचंद्र ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दिमें भी हुए हैं जो वसुनंदि-सैद्धान्तिकके गुरु थे और जिन्हें वसुनंदि श्रावकाचारमें 'जिनागमरूपी समुद्रकी वेला-तरंगोंसे धूयमान और संपूर्ण जगत्में विख्यात' लिखा है। बहुत संभव है कि, यही नेमिचन्द्र द्रव्यसंग्रहके कर्ता हों। परंतु हमारी रायमें अभीतक यह असिद्ध है कि, द्रव्यसंग्रह कौनसे नेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ है, और जबतक यह सिद्ध न हो जाय कि द्रव्यसंग्रह तथा गोम्मटसारके कर्ता दोनों एक ही व्यक्ति थे उस समय तक प्रोफेसर साहबकी उक्त ३० पेजकी सारी प्रस्तावना प्रायः व्यर्थ और असंबंधित ही रहेगी। क्योंकि वह बहुधा गोम्मटसारके कर्ता नेमिचंद्र और उनके शिष्य चामुंडरायको लक्ष्य करके ही लिखी गई है।

८ ग्रंथभरमें, यद्यपि, अनुवादकार्य आमतौरसे अच्छा हुआ है, परंतु कहीं कहीं उसमें भूलें भी की गई हैं; जिनके कुछ नमूने इस प्रकार हैं:—

(क) सम्यग्दर्शनादिकका अनुवाद करते हुए 'सम्यक्' शब्दका अनुवाद Right आदि की जगह Perfect अर्थात् 'पूर्ण' किया है, और इस तरह पर पूर्ण श्रद्धान, *पूर्णज्ञान, (केवलज्ञान) और पूर्णचारित्रहीको मोक्षकी प्राप्तिका उपाय बतलाया है। परन्तु श्रद्धानादिकको यह पूर्णता कौनसे गुणस्थानमें जाकर होती है और उससे पहलेके गुणस्थानोंमें सम्यग्दर्शनादिकका अस्तित्व माना गया है या कि नहीं, साथ ही, इसी ग्रंथकी मूल गाथाओंमें रत्नत्रयका जो स्वरूप दिया है उससे उक्त कथनका कितना विरोध आता है, इन सब बातों पर अनुवादक महाशयने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस लिए यह अनुवाद ठीक नहीं हुआ।

(ख) पृष्ठ ११४ पर, दर्शनावरणी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले अनंत दर्शनका अनुवाद Perfeet faith अर्थात् 'पूर्ण श्रद्धान' अथवा सम्यक् श्रद्धान किया है, जो जैनदृष्टिसे बिलकुल गिरा हुआ है। इस अनुवादके द्वारा मोहनीय कर्मके उपशमादिकसे सम्बंध रखनेवाले सम्यग्दर्शनको और दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमादिकसे उत्पन्न होनेवाले दर्शनको एक कर दिया गया है!!

* देखो इसी ग्रंथका पृ० ११४, जहां Perfect Knowledge (पूर्ण ज्ञान) उस ज्ञानको बतलाया है जो ज्ञानावरणी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है।

(ग) पृष्ठ ५ पर ' माण्डलिक ग्रंथकार ' का अर्थ ' अन्य समस्त ग्रंथकार ' (all other writers) किया है जो ठीक नहीं है । मांडलिकसे अभिप्राय वहाँ मतविशेषसे है ।

(घ) प्रस्तावनामें एक स्थान पर, ' सुयोगे सौभाग्ये मस्तनाम्नि प्रकटित भगणे ' का अनुवाद दिया है—When the auspicious Mrigsira star was visible है—अर्थात्, जिस समय शुभ मृगशिरा नक्षत्र प्रकाशित था । इस अनुवादमें ' सुयोगे सौभाग्ये ' का कोई ठीक अर्थ नहीं किया गया । मालूम होता है कि इन पदोंमें ज्योतिषशास्त्रविहित ' सौभाग्य ' नामके जिस योगका उल्लेख था, उसे अनुवादक महाशयने नहीं समझा और इसी लिए 'सौभाग्य' का ansplions (शुभ) अर्थ करके उसे मृगशिराका विशेषण बना दिया है । इस प्रकारकी भूलोंके सिवाय अनुवादकी तरतीब (रचना) में भी कुछ भूलें हुई हैं, जिनसे मूल आशयमें कुछ गड़बड़ी पड़ गई है । जैसे कि गाथा नं० ४५ का अनुवाद । इस अनुवादमें दूसरा वाक्य इस ढंगसे रक्खा गया है, जिससे यह मालूम होता है कि पहले वाक्यमें चारित्रका जो स्वरूप कहा गया है, वह व्यवहारनयको छोड़कर किसी दूसरी ही नयविवक्षासे कथन किया गया है । परंतु वास्तवमें मूलका ऐसा अभिप्राय नहीं है । इसी तरह २१ वें नम्बरकी गाथाका अनुवाद करते हुए निश्चय और व्यवहार कालके स्वरूपमें परस्पर गड़बड़ी की गई है । ४४ वीं गाथाके अनुवादकी भी ऐसी ही दशा है ।

अब ग्रंथकी अँगरेजी टीकामें जो दूसरे शास्त्रविरुद्ध कथन पाये जाते हैं, उनके भी दो चार नमूने दिखलाकर यह समालोचना पूरी की जाती है:—

(क) पृष्ठ १२ पर गणधरोंको केवलज्ञानी लिखा है, जो ठीक नहीं । गणधर अपनी उस अवस्थामें सिर्फ चार ज्ञानके धारक होते हैं ।

(ख) पृष्ठ १५ पर ' प्रत्यभिज्ञान ' और हिन्दूफिलासोफीके ' उपमान प्रमाण ' को एक बतलाया है । परंतु स्वरूपसे ऐसा नहीं है । प्रत्यभिज्ञानका सिर्फ एक भेद, जिसे सादृश्य प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, उपमान प्रमाणके बराबर हो सकता है ।

(ग) पृष्ठ ३६ पर यह सूचित किया है कि, जो जीव एक बार निगोदसे निकल जाता है—उन्नति करना प्रारंभ कर देता है—वह फिर कभी उस निगोददशाको प्राप्त नहीं होता; उसके पतनका फिर कोई अवसर नहीं रहता। परंतु यह कथन जैनशासनके विरुद्ध है । जैनधर्मकी शिक्षाके अनुसार निगोदसे निकला हुआ जीव फिर भी निगोदमें जा सकता है और उन्नतिकी चरम सीमाको पहुँचनेके पहले जो उत्थान होता है उसका पतन भी कथंचित् हो सकता है ।

(घ) गाथा नं० ३० की टीकामें पंचप्रकारके मिथ्यात्वोंका जो स्वरूप लिखा है वह प्रायः शास्त्र सम्मत मालूम नहीं होता । जैसे विपरीत मिथ्यात्व उसे बतलाया है " जिसमें यह खयाल किया जाता है कि यह या वे दोनों सत्य हो सकते हैं " और अज्ञान मिथ्यात्व उसे, " जिसमें श्रद्धानका सर्वथा अभाव होता है अर्थात् किसी प्रकारका कोई श्रद्धान नहीं होता ।" इस प्रकारके स्वरूपका तत्त्वार्थसार और तत्त्वार्थ राजवार्तिकादि ग्रंथोंसे मेल नहीं मिलता ।

(५) गाथा नं० ४४ की टीकामें ज्ञानावरणीय कर्मके उपशमसे ' ज्ञान ' और दर्शनावरणीय कर्मके उपशमसे ' दर्शनका ' उत्पन्न होना लिखा है; और इस तरह पर ज्ञान तथा दर्शनको ' औपशमिक ' भी प्रगट किया है, जो जैन—

सिद्धान्तकी दृष्टिसे बिलकुल गिरा हुआ है। क्योंकि ज्ञान तथा दर्शन 'क्षायिक' और 'क्षायोपशमिक' इस तरह दो प्रकारका होता है। इसी प्रकार, ग्रंथके परिशिष्टमें, जो यह लिखा है कि केवलज्ञानीको कर्मोंका कोई आस्रव नहीं होता, वह भी जैनसिद्धान्तकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। क्योंकि सयोगकेवलीके योग विद्यमान होनेसे कर्मोंका आस्रव जरूर होता है।

अन्तमें हम अपने मित्र श्रीयुत कुमार देवेन्द्र-प्रसादजीको हृदयसे धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने प्राचीन जैनग्रंथोंको इस प्रकार टीका-टिप्पणादि-सहित, उत्तमताके साथ प्रकाशित करनेका यह महान् बीड़ा उठाया है। साथ ही, उनसे यह प्रार्थना भी करते हैं कि, वे भविष्यमें इस बातका पूरा खयाल रक्खें कि उनके यहाँसे प्रकाशित हुए ग्रंथोंमें इस प्रकारकी भूलें न रहने पायँ; और इस तरह पर उनकी ग्रंथमाला एक आदर्श ग्रंथमाला बनकर अपने उस उद्देश्यको पूरा करे जिसको लेकर वह अवतरित हुई है। *

ता० ३-१-१८

---

* यह समालोचना संपादक जैनहितैषीकी प्रेरणा तथा कुमार देवेन्द्रप्रसादजीके भी इच्छा प्रकट करने पर जैनहितैषीके लिए लिखी गई। —लेखक।

विचित्र ब्याह।

(लेखक, पं० रामचरित उपाध्याय।)

[गतांकसे आगे]

सप्तम सर्ग।

एक दिवस माताने सुतसे सकल ब्याह-वृत्तान्त कहा,
ध्यानसहित सुनकर उसको वह, बहुत देर तक मौन रहा।
फिर सतर्क बोला अति दृढ़ हो, माता, मैं न करूँगा ब्याह,
गृह-बन्धनमें फँसनेकी है, मुझमें नहीं तनिक भी चाह॥ १॥
सत्याग्रहसे रह कर मुझको, करना है भारत-उद्धार,
मेरे सिर पर लाद न माता, पराधीनताका दुख-भार।
यदि अबलाके लिए न चिन्ता, प्रबला होने पावेगी,
जन्मभूमि फिर मेरे रहते, कैसे रोने पावेगी॥ २॥
यदि वनिता, सुत, सुता न होवें, तो फिर दुःख सहेगा कौन?
'हाँ हुजूर' भी अपने मुखसे, खलको हाय कहेगा कौन?।
देवराजसे बढ़कर वह है, पराधीनता जिसे न हो,
देश, जातिका गर्व चित्तमें, मानव होते किसे न हो?॥ ३॥
सफल जन्म है उसी मनुजका, जिसने किया देशउपकार,
स्वार्थ-लीन ही रहा सदा जो, उसके जीवनको धिक्कार।
सदा स्वतंत्र रहूँगा जगमें, जननी, मैं बस इसी लिए,
सत्य मान तू नहीं करूँगा, ब्याह कभी भी किसी लिए॥ ४॥

देश मात्रका मैं हूँ, मेरा-देश मात्र है मन्त्र यही
मैंने स्थिर कर लिया अम्बिके, इसमें है भ्रम-लेश नहीं ।
कोटि अनाथा स्त्रियाँ पड़ी हैं, भारतमें अति दीन मलीन,
जीवन भर तन मनसे उनकी, सेवामें होऊँगा लीन ॥ ५ ॥

निःसहाय बहु बालक भी हैं, शिक्षा उन्हें दिलाऊँगा,
सोते हुए देशको अपने, करके यत्न जगाऊँगा ।
वह क्यों अच्छा हो सकता है, जिसने किया न अच्छा काम,
और कीर्तिकारक अवनी पर, जिसने किया न अपना नाम ॥ ६ ॥

विना दुःख भोगे कैसे दुख, जन्मभूमिका होगा दूर,
प्रतिपल हाय, हिन्दका शोणित, चूस रहे हैं मानव क्रूर ।
इसी लिए मैं प्राणप्रणसे दैशिक व्रतको पालूँगा,
करके यत्न अविद्या-तमको शीघ्र यहाँसे टालूँगा ॥ ७ ॥

विषय-वासनासे सुन जननी, मिलता है सुख-लेश नहीं,
कभी भोगनेसे इच्छायें, हो सकतीं निःशेष नहीं ।
इसी लिए कौमार-व्रत भी करना मैंने ठाना है,
जगमें मैंने सबसे अच्छा परोपकृतिको माना है ॥ ८ ॥

प्रतिदिन हा अवनति-खन्दकमें, गिरता जाता है यह देश,
प्रथम सुखी था यथा आज त्यों, मोह-विवश पाता है क्लेश ।
ऐसे समय विषयमें फँसना, बुद्धिमानका काम नहीं,
सुनकर जन्मभूमि-क्रन्दनको, मिल सकता आराम नहीं ॥ ९ ॥

देश-निवासी दुखसे रोवें, मैं कैसे सुख सोऊँगा,
जान बूझकर अपना जीवन, नहीं अकारथ खोऊँगा ।
निज-समाजके दैन्य देख भी, जिनमें उगती दया नहीं,
उनका जीना मरना सम है, जिनमें कुछ भी हया नहीं ॥ १० ॥

क्षमा करो माताजी, मुझको, प्रेमसहित दे दो वरदान,
देष-हितैषीके संकटमें, स्वयं सहायक हैं भगवान ।
शपथसहित सच कहता हूँ, यदि तेरी आज्ञा पाऊँगा,
तो फिर धर्म-मर्म मानवके, करके कर्म दिखाऊँगा ॥ ११ ॥

भाग्यमती है जगमें नारी, जननी, है सुतवती वही,
सती वही, मतिमती वही है, और सुखी गुणवती वही ।
जिसका तनय विनयसे नयसे, देश-वृद्धिके लिए सदा-
उद्यत रहता तन, मन, धनसे, स्वत्व-सिद्धिके लिए सदा ॥ १२ ॥

जीते रहो सत्य कहते हो, हरिसेवक, मेरे प्यारे,
देशभक्ति हो अटल तुम्हारी, मेरे नयनोंके तारे ।
पर मेरी बातोंको मानो, परम पूज्य मुझको मानो,
मेरे कहनेको निज मनमें, शिशुका खेल नहीं जानो ॥ १३ ॥

प्राणीका कर्तव्य प्रथम है, निजकुलको विस्तृत करना,
कभी स्वप्नमें भी विघ्नोंसे, नहीं चाहिए सुत, डरना।
अपने संकल्पित कामोंको, जो करते हैं बूझ विचार,
सभी अवस्थाओंमें उनके, हो जाते हैं बेड़े पार ॥ १४ ॥

जलमें जलज बना रहता है, पर रखता संपर्क नहीं,
वैसे सुधी गृही बनते हैं, व्यर्थ करो तुम तर्क नहीं।
अपने कार्य किसे सौंपोगे, यदि होगी सन्तान नहीं,
विना ब्याहके किये तुम्हारा, सुत, होगा कल्याण नहीं ॥ १५ ॥

जैसे होगा ब्याह तुम्हारा, अपनी आँखों देखूँगी,
पुत्रवधू पाकर अपनेको, पुत्रवती मैं लेखूँगी।
जीते होते पिता तुम्हारे, तब होता यदि ब्याह नहीं,
हरिसेवक, तो मेरे मनमें, कुछ भी होती दाह नहीं ॥ १६ ॥

सभी कहेंगे पितृ-हीनका, क्यों कर हो सकता है ब्याह,
ऐसी बातें सुन कर बेटा, प्रतिपल भरा करूँगी आह।
इसी लिए मेरे कहनेसे, हर्षित हो निज ब्याह करो,
देशभक्तिमें नहीं रुकावट-होगी, मनमें नहीं डरो ॥ १७ ॥

नहीं नहीं मा, भूल रही हो, मेरी बात जाइए मान,
धर्म-विरुद्ध कार्य मत करिए, कहिए कहाँ गया है ज्ञान ?
धन देकर यदि कन्या लोगी, तो वह दासी होवेगी,
फिर उससे जो सन्तति होगी, दोनों कुलको खोवेगी ॥ १८ ॥

दासीसे या दासी-सुतसे, माता, क्या होगा उपकार ?
अपने कुलको स्वयं कलंकित, नहीं कीजिए बूझ विचार।
क्वाँरे रहे भीष्म पर तो भी, 'बाबा' बोले जाते थे।
सबसे बढ़कर सबसे पहले, जगमें आदर पाते थे ॥ १९ ॥

रुपये मत फेंको, मुझको दो, उनसे करूँ विविध व्यापार,
द्रव्य बढ़ाकर सुख भी भोगूँ, और करूँ जगका उपकार।
धन दे करके पाप कमाना, बुद्धिमानका काम नहीं,
विद्या-विभव व्यर्थ हैं उसके, जिसका भू पर नाम नहीं ॥२०॥

पशुओंसा नरका भी जगमें, जन्म गवाँना ठीक नहीं,
विषय-लीन हो, पराधीन हो, दुःख उठाना ठीक नहीं।
कार्य-दक्ष जो विपुलवक्ष हो, देश-पक्षमें रहे खड़ा,
वही तनुज है, वही मनुज है, वही विबुध है वही बड़ा ॥ २१ ॥

ब्रह्मचर्यका पालन जिसने-किया, किया उसने कुछ काम,
जो नर हो सुख-दायक जगको, हुआ उसीका जन्म ललाम।
बालब्रह्मचारी मैं रहकर, भारत-दुःख मिटाऊँगा,
दीन भारतीयोंके कारण, मैं भी मर मिट जाऊँगा ॥ २२ ॥

मेरी बातोंसे तुम जननी, मनमें तनिक न होना रुष्ट,
केवल स्त्री-धन, अशन, वसनमें, पामर नर रहते हैं तुष्ट।
पर-हितमें नित रत रहते हैं, जिनका उर है उच्च उदार,
अपने सुखसे सुखी रहे जो, वही मनुज है भूका भार॥ २३॥

कृपा करो मा, इसी लिए मैं, ब्याह करूँगा अभी नहीं,
जन्मभूमि-हित जीवन दूँगा, व्यर्थ मरूँगा कभी नहीं।
नश्वर है यह देह खेहकी, अजर अमर है पर-उपकार,
जैसे तैसे प्राणप्रणसे, क्यों न करूँ फिर देशोद्धार॥ २४॥

कहा सुशीलाने फिर सुतसे, बेटा, तूने ठीक कहा,
पर ऐसा करनेसे मेरे, मनमें होगा दुःख महा।
इसी लिए तुम मेरा कहना-मानो, आना कानी छोड़,
कभी लड़कपनके वश होकर, मुझसे करो न नातातोड़॥ २५॥

किस कठिनाईसे सुत, तुमको, पोसा पाला है मैंने,
क्या न तुम्हारे लिए जगतमें, सहा कसाला है मैंनें।
मेरी बात मौन हो मानो, उससे करो नहीं इन्कार,
मातृ-भक्ति सबसे बढ़कर है, रख लो मेरा प्यार दुलार॥ २६॥

जिसने माता और पिताका, कहना माना नहीं कभी,
उसने धर्मयुक्त हो जगमें, रहना जाना नहीं कभी।
निज करनीसे मेरे मनको, साहस करके मत तोड़ो,
अविनयमय हो, तनय, नहीं तुम, मुझे बुढ़ापेमें छोड़ो॥ २७॥

यदि मा मुझको मान रहे हो, तो तुम मानो मेरी बात,
ब्याह करो मेरे कहनेसे, वाद करो मत, मेरे तात।
जो करती हूँ प्रेम-दृष्टिसे, उसको तुम देखो चुपचाप,
यदि बोलोगे तो जीवन भर, मुझको होवेगा सन्ताप॥ २८॥

कुछ नहीं हरिसेवकने कहा,
वह नितान्त निरुत्तर हो रहा।
पग गई जननी अति मोदमें,
तनयको भरके निज गोदमें॥ २९॥

[असमाप्त।]

जैनधर्मका भूगोल और खगोल ।

[लेखक,-श्रीयुक्त **जिज्ञासु** ।]

यों तो पृथ्वीके प्रायः सभी धर्मोंके साहित्यमें भूगोल और खगोलके विषयमें कुछ न कुछ लिखा हुआ है; पर उनमें हिन्दू और जैनधर्मका साहित्य खास तौरसे उल्लेखयोग्य है । हिन्दुओंके पुराणों और ज्योतिषग्रन्थोंमें, इस विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है; परंतु जैनसाहित्यमें जिस क्रमसे और सूक्ष्मताके साथ यह विषय लिखा गया है, वैसा हिन्दूसाहित्यमें नहीं। हिन्दू ग्रन्थकार इस विषयमें एकमत भी नहीं हैं-उनमेंसे कोई कुछ लिखता है और कोई कुछ; परंतु जैनसाहित्यमें वह बात नहीं । जैनधर्मकी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों शाखाओंका साहित्य इस बारेमें पूरी पूरी एकता रखता है ।

परंतु, जबसे आधुनिक वैज्ञानिक युगका आरंभ हुआ है, तबसे इन प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें लिखी हुई बातोंकी प्रामाणिकताके ऊपर बहुत ही भयानक उपद्रव होना शुरू हुआ है । प्राचीन कालमें भूगोल और खगोलविषयक पदार्थोंके परीक्षण या निरीक्षण करनेके लिए उपयुक्त साधन न थे, इस कारण उस समय प्रत्येक धर्मावलम्बीको अपने अपने धर्मग्रंथोंमें लिखी हुई बातोंको केवल श्रद्धाके सामर्थ्यसे ही सत्य मानना पड़ता था । एक तो उन कथनोंमें शंका करनेके कारण ही कम थे, और कदाचित् शंकायें होती भी थीं, तो उनके निवारण करनेके विशेष साधन नहीं थे । परंतु इस वैज्ञानिक युगमें—जब कि आकाश पाताल एक किया जा रहा है और मनुष्य प्रकृतिके गूढ़से गूढ़ पटलोंको अपनी शक्तिद्वारा बाहर लाकर सर्वप्रत्यक्ष कर रहा है-वह बात नहीं रही । अब श्रद्धाका साम्राज्य नष्ट हो रहा है और उसके स्थानमें बुद्धिकी प्रतिष्ठा हो रही है । अब पुराने शास्त्रोंमें कही हुई वे ही बातें श्रद्धाके सहारे 'येन केन प्रकारेण' स्वीकृत की जा सकती हैं जो सर्वथा परोक्ष हैं और जिनका ज्ञान करानेके लिए सिवा धर्मशास्त्रके और कोई साधन नहीं है । प्रत्यक्ष पदार्थोंके बारेमें अब धर्मशास्त्रोंके कथनका जैसा चाहिए वैसा आदर नहीं किया जाता । कारण यह है कि ऐसी अनेक बातें वैज्ञानिक परीक्षाओंके सामने निर्मूल ठहर चुकी हैं जिनका वर्णन पुराने ग्रंथोंमें बड़े विस्तारके साथ और बड़े उत्साहके साथ लिखा गया है । भूगोल और खगोल विषयक बातें भी उन्हींमेंसे हैं ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि, जैनधर्मकी पुस्तकोंमें इन दोनों विषयोंका बहुत ही सूक्ष्म और बहुत विस्तारयुक्त वर्णन किया है और इस सूक्ष्मता और विस्तृतताके कारण ही अभी तक जैन विद्वान् अपने धर्मशास्त्रोंको अभिमानके साथ सर्वज्ञप्रणीत अतएव सर्वथा सत्यप्रतिपादित करते आये हैं । परंतु अब वह समय नहीं रहा कि केवल बुद्धिको चकरा देनेवाले बड़े बड़े लम्बे चौड़े वर्णनोंको देखकर ही लोग उनकी सत्यताका स्वीकार कर लें । अब तो मनुष्यकी बुद्धि प्रत्येक कथनका मूल और क्रमविकास सप्रमाण पूछना चाहती है । प्रत्यक्षके साथ संबंध रखनेवाले प्रायः सब ही पदार्थोंके कार्यकारण भावोंका सांगोपांग निरीक्षण करनेके बाद ही लोग उनकी सत्यासत्यता स्वीकार करते हैं । केवल सर्वज्ञकथित कह देनेसे ही अब काम नहीं चलता । प्रमाणोंद्वारा युक्तियुक्त या बुद्धिगम्य करने-कराने पर ही अब कार्यसिद्धि अवलम्बित है ।

जिस समय हम अपने साहित्योक्त भूगोल-

खगोलविषयक वर्णनको—जो हमारे साहित्यका एक मुख्य अंग होकर उसके बहुत बड़े भागको रोके हुए हैं—पढते सुनते हैं, उस समय हमारे हृदयमें अनेक प्रकारकी शंकातरंगें उच्छ्वसित होने लगती हैं। हमारे ग्रंथोंमें इस विषयमें जितनी बातें कही गई हैं, उनमेंसे एक भी बात ऐसी नहीं है, जो अनेकानेक प्रमाणों और साधनोंद्वारा निश्चित किये गये आधुनिक भौगोलिक और खगोलिक विचारोंसे—जिनमेंकी मोटी मोटी बातोंसे हमारा प्रत्येक बालक बचपनहीसे स्कूलोंमें परिचित हो जाता है—मेल रखती हों। जो विद्यार्थी स्कूलोंको छोड कर कालेजोंके कमरोंमें भी कुछ काल तक बैठ आते हैं, वे तो हमारे ग्रंथोंकी इन बातोंको सुनकर आदरान्वित आश्चर्यके बदले वैसा ही आश्चर्य करते हैं जैसा कि हमारे श्रद्धालु और विचारशील जैन हिन्दुओंके पुराणोंकी अमानुषिक बातोंको सुनकर करते हैं। बहुतसे विद्यार्थी तो यहाँतक विश्वास कर लेते हैं—चाहे वे फिर किसी भय या शंकाके कारण उसे स्पष्ट भले ही प्रकट न कर सकें—कि जैनग्रन्थकार इन बातोंकी निर्मूल कल्पनायें करनेमें पुराणकारोंसे भी बढ़े चढ़े हैं! जैनधर्मके पण्डितों और जानकारोंके सामने भी अब इस विषयकी चर्चा उपस्थित होने लगी है; परन्तु उनके पास इसका केवल एक उत्तर है और वह यह कि ऐसे लोगोंके विचार या विश्वास अज्ञानजन्य हैं, अथवा नास्तिकताके फल हैं; परंतु इस अज्ञानता या नास्तिकताके निवारण करनेका उनकी ओरसे कोई भी प्रयत्न नहीं किया जाता; उलटा इस प्रकारके निर्बलतासूचक उद्गारोंद्वारा शंकितोंको अपने विचारोंमें और भी दृढ बननेका कारण उपस्थित किया जाता है।

इन पंक्तियोंके जिज्ञासु लेखकने अपनी बुद्धिके अनुसार जैनधर्मके भूगोल-खगोलका-जो कि तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदि टीकाओंमें और त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति त्रैलोक्यसार, आदि ग्रंथोंमें लिखा है-और साथ ही आधुनिक विज्ञानद्वारा संशोधित भूगोल-खगोलका, इस तरह दोनोंका ही थोड़ासा अध्ययन किया है और दोनोंका परस्पर मिलान करके देखा है कि किसी तरहसे भी इनकी संगति मिल सकती है या नहीं। परन्तु इसे (लेखकको) संगतिके बदले विरोध ही एकान्तरूपसे नजर आया है। विरोधके होनेमें कोई आश्चर्य नहीं है; परंतु विरोध विरोधमें अन्तर होता है। एक विरोधका परिहार किया जा सकता है और दूसरा अपरिहार्य होता है। यह विरोध मुझे अपरिहार्य ही मालूम हुआ और सो भी प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे। जैनशास्त्रोंमें पृथ्वीको कुम्हारके चक्रकी तरह या झलरीके समान चिपटी और गोल बतलाया है। उसपर असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। वे एक दूसरेसे दूने दूने विस्तारवाले हैं और बलयके आकार एक दूसरेको घेरे हुए हैं। उन सबमें मध्यवर्ती एक लक्ष योजनका लंबा चौड़ा जंबूद्वीप है। इस द्वीपके दक्षिण भागान्तमें भरतखण्ड नामका क्षेत्र है, जिसमें हम रहते हैं। स्वर्गीय स्याद्वादवारिधि पण्डित गोपालदासजी बरैयाने अपने 'जैन जागरफी' नामक निबन्धके अंतमें लिखा है—

"आज कल हम लोगोंका निवास मध्यलोकके जम्बूद्वीपसंबंधी दक्षिणदिशावर्ती भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें हैं। इस आर्यखण्डके उत्तरमें विजयार्द्ध पर्वत है। दक्षिणमें लवणसमुद्र, पूर्वमें महागंगा और उत्तरमें महासिन्धु नदी है। भरतक्षेत्रकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ योजन है। इसके बिलकुल बीचमें विजयार्द्ध पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे भरतक्षेत्रके दो खण्ड हो गये हैं। तथा महागंगा और महासिन्धु हिमवत् पर्वत-

से निकलकर विजयार्द्धकी गुफाओंमें होती हुई पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जा मिली हैं, जिनसे भरतक्षेत्रके छह खण्ड हो गये हैं।

"यह सब कथन प्रमाण योजनसे है। एक प्रमाण योजन वर्तमानके २००० (दो हजार) कोशके बराबर है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि, आर्य खण्ड बहुत लम्बा चौड़ा है। चतुर्थ कालकी आदिमें इस आर्यखण्डमें उपसागरकी उत्पत्ति होती है, जो क्रमसे चारों तरफको फैलकर आर्यखण्डके बहुत भागको रोक लेता है। वर्तमानके एशिया, योरोप, आफ्रिका, अमेरिका और आस्ट्रेलिया ये पाँचों महाद्वीप इसी आर्यखण्डमें हैं। उपसागरने चारों ओर फैलकर ही इनको द्वीपाकार बना दिया है। केवल हिन्दुस्तानको ही आर्यखण्ड नहीं समझना चाहिए। वर्तमान गंगा सिन्धु महागंगा या महासिन्धु नहीं है।"

यदि श्रद्धादेवीको सन्तुष्ट रखनेके लिए यह सब कथन किसी तरह सत्य भी मान लिया जाय, तो भी काम नहीं चल सकता। इस कथनसे सम्बंध रखनेवाले जो और और कथन हैं, वे इस मानतासे तत्काल ही रुष्ट हो जाते हैं और मूलकोही नाश करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं। जैनधर्मका खगोल ज्ञान कहता है, कि इस लक्षयोजनप्रमाण जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य अविश्रान्त रूपसे निरंतर परिभ्रमण करते रहते हैं। जम्बूद्वीपके मध्यभागमें जो लक्ष योजन ऊँचा मेरु पर्वत है, उसीके चारों ओर ये चंद्र सूर्य परिक्रमण किया करते हैं। जब एक सूर्य मेरुपर्वतकी दक्षिण ओरको प्रकाशित करता है तब दूसरा उत्तरकी ओरको, और दोनों चंद्र क्रमशः पूर्व और पश्चिम भागमें रहते हैं। अर्थात् प्रत्येक चन्द्र और सूर्य मेरु पर्वतके एक ओरका सारा भूभाग प्रकाशित करता है। जो सूर्य या चन्द्र मेरुके दक्षिणकी तरफ परिक्रमण करता है, वह अकेले भरतको ही नहीं, किन्तु उसके समान विस्तारवाले जम्बूद्वीपके अन्य ६२ भूखण्डोंको भी आलोकित करता है। ऐसी दशामें वर्तमानमें जो एशिया, यूरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलियादिक भूभागोंमें (जो जैनधर्मशास्त्रोंके अनुसार भरतखण्डके ही अन्तर्गत हैं) भिन्न भिन्न काल प्रतीत होता है वह कभी घटित नहीं हो सकता। यह तो सर्वप्रत्यक्ष और सर्वथा असंदिग्ध बात है कि जब भारतके बम्बई शहरमें दिनके बारह बजते हैं, तब अमेरिकाके न्यूयार्क नगरमें रातके बारह बजनेकी तैयारी होती है! न्यूज़ीलेंडमें जब शामके ६ बजते हैं और रात होने लगती है, तब इंग्लेंडमें प्रातःकालके ६ बजते हैं और सूर्योदयका समय होता है! अकेले भरतक्षेत्रहीमें यह दिन रातोंका महान् अंतर जैनशास्त्रानुसार कैसे प्रमाणित किया जा सकता है? उत्तरीय ध्रुवका समीपवर्ती प्रदेश जब ग्रीष्म ऋतुमें लगातार ६ महीने तक सूर्यसे आलोकित रहता है, तब दक्षिणीय ध्रुव उसी तरह अन्धकारनिमग्न रहता है—इन दोनों स्थानों पर क्रमशः ६ महीनेकी रात और ६ महीनेका दिन होता है! यह बात जैनशास्त्रोंसे कदापि सिद्ध नहीं हो सकती। पृथ्वीको गेंदकी तरह गोल माने बिना इस शंकाका समाधान नहीं हो सकता। शीतकालमें भारतमें रात १३॥ घंटेकी और दिन १०॥ घंटेका हो जाता है। इससे अधिक फर्क कभी नहीं पड़ता। किन्तु इंग्लेण्डमें रात १८ घंटेकी और दिन केवल ६ ही घंटेका रह जाता है! इस विषमताका कारण कोई जैनग्रंथ नहीं बतला सकता। दूरकी बात जाने दीजिए, हमारे हिन्दुस्थानहीकी एक बात ले लीजिए। यह तो सभी जानते हैं कि, जिस समय मदरासमें सूर्योदय होता है, उसके ३९ मिनिट बाद बम्बईमें सूर्योदय होता है (कलकत्ता,

कराँची आदि नगरोंके बीचमें भी इसी प्रकारका फर्क है)। अब बतलाइए, कि इस विलम्बका क्या कारण है? जैनग्रंथोंके देखनेसे तो मालूम होता है कि सूर्यकी कमसे कम गति एक मुहूर्तमें (४८ मिनिटमें) लगभग ५२५१ योजनकी बतलाई गई है। (देखो, तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृष्ठ १५७।) इस हिसाबसे सूर्यका प्रकाश एक मुहूर्तमें सब ही भूखण्डोंमें व्याप्त हो जाना चाहिए, पर हम देखते हैं कि मदरास और बम्बईके बीचके केवल पाव योजनके ही लगभग अन्तरमें उसे फैलते २९ मिनट लग जाते हैं! बिना पृथ्वीके गोल और गतिमती माने, संसारका कोई भी भौगोलिक इसका उत्तर नहीं दे सकता।

हिन्दुओंके पुराणग्रंथोंमें भी भूगोल-खगोलका वर्णन उसी ढंगसे लिखा है जैसा जैनग्रंथोंमें है, परंतु ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठित ग्रंथोंमें, जिनमें आर्यप्रजाकी अलौकिक बुद्धिका जाज्वल्यमान प्रकाश प्रदीप्त है, ठीक वैसा ही कथन मिलता है जैसा आधुनिक पाश्चात्य भौगोलिकोंने प्रयोगों द्वारा निश्चित किया है। यद्यपि श्रीपति, लल्ल और भास्कराचार्य आदि पिछले समर्थ ज्योतिषियोंने पृथ्वीका भ्रमण स्वीकार नहीं किया है, तो भी आर्यभट्ट नामके सुप्रसिद्ध विद्वान्ने आजसे १५०० वर्ष पहले ही इस सिद्धान्तका प्रतिपादन कर दिया था। सर रमेशचन्द्र दत्त अपने सुप्रसिद्ध भारतीय इतिहासमें लिखते हैं—"आर्यभट्ट कहता है कि, जिस प्रकार किसी नौकामें बैठा हुआ मनुष्य आगे बढ़ता हुआ स्थिर वस्तुओंको पीछेकी ओर चलती हुई देखता है, उसी प्रकार तारे भी यद्यपि वे अचल हैं तथापि नित्य चलते हुए दिखाई पड़ते हैं।"

श्वेताम्बरसम्प्रदायके आचाराङ्गसूत्रकी टीकामें भी आर्यभट्टके इस पृथ्वीभ्रमण सिद्धान्तका उल्लेख मिलता है। यथा—

"भूगोलः केषाञ्चिन्मतेन नित्यं चलन्नेवास्ते, आदित्यस्तु व्यवस्थित एव। तत्रादित्यमण्डलं दूरत्वात्ये पूर्वतः पश्यन्ति तेषामादित्योदयः। आदित्यमण्डलाधोव्यवस्थितानां मध्याह्नः। ये तु दूरातिक्रान्तत्वान्न पश्यन्ति तेषामस्तमित इति।"

पृथ्वीका गोलाकार होना तो प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्वानोंने स्वीकृत किया है और चपटी माननेवालोंका अनेक युक्तियों द्वारा खण्डन किया है। लल्लसिद्धान्तमें लिखा है कि—

समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः॥

भास्कराचार्यने भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि जब हिन्दुओंके प्रसिद्ध ज्योतिर्विदोंने पृथ्वीको गेंदकी तरह गोल माना है, तो फिर हिन्दू पुराणकारोंने और उनकी ही तरह जैनग्रन्थकारोंने उसे कुम्भकारके चक्रकी तरह चिपटी क्यों माना है? इसके समाधानमें बहुतसे विद्वान् कहते हैं कि साधारण दृष्टिसे देखने पर पृथ्वी हमको सर्वत्र सम (चपटी) ही दिखाई देती है—गोलाकार नहीं प्रतीत होती। इसी कारण पुराणकारोंने, जिनका उद्देश्य केवल कल्पित बातों द्वारा सामान्य जनताको यत्किञ्चित् ज्ञान करानेका था, लोगोंकी समझमें आने योग्य सीधा सादा वर्णन लिखा है। पर ज्योतिषियोंका उद्देश्य कुछ और ही था; उन्हें भूगोल और खगोलके रहस्योंका पता लगाना था, गणितके सिद्धान्तों द्वारा सृष्टिकी मुख्य मुख्य घटनाओंका कार्यकारणभाव जानना था, इस लिए उन्हें पृथ्वी और उसके ग्रहों-उपग्रहोंका खूब तीक्ष्ण दृष्टिसे निरीक्षण करके अपने विचार निश्चित करने पड़े थे। अब रही जैनग्रन्थकारों-

की बात, सो उन्होंने अनेक बातोंमें हिन्दू पुराणोंहीका अनुकरण किया है। हिन्दू पुराणोंमें जो कुछ लिखा हुआ था, उसीको इन्होंने चतुराईसे अच्छी तरह काटछाँटकर, उनकी परस्पर विरोधिता और असंगतताको निकाल कर सुसंकलित रूपमें अपने ग्रंथोंमें उल्लिखित कर दिया। हमारा विद्यमान साहित्य लगभग ४ थी ५ वीं शताब्दिके बादका बना हुआ है और वह समय हिन्दुओंके पुराणोंकी लोकप्रियताका था। हिन्दू जनतामें पुराणोंका अत्यधिक आदर देखकर जैन विद्वानोंने भी उन्हींका अनुकरण किया। हिन्दुओंके और जैनोंके पुराणग्रन्थोंका तुलनात्मक दृष्टिसे परस्पर मिलान करनेसे इस कथनकी सत्यता विदित हो जायगी। हमें यह भी न भूल जाना चाहिए कि, विद्यमान जैनधर्मका ढाँचा ठीक वैसा ही नहीं है जैसा भगवान् महावीरदेवने अपने जीवनकालमें स्थिर किया था। इस इतने लम्बे और विपत्तिसंकुल ढाइ हजार वर्ष परिमित कालमें किसी भी धर्म, राष्ट्र और समाजके स्वरूपमें परिवर्तन न हो, यह प्रकृतिके नियमसे सर्वथा असम्भव है। जैनधर्मके मूलस्वरूपका जो धुँधला चित्र वर्तमान जैनसाहित्यसमुद्रमें गहरा गोता लगानेसे दिखाई देता है, उसमें हम इन विचारोंका आभास पा सकते हैं। इन कारणोंसे हमारा अनुमान होता है कि, जो भौगोलिक सिद्धान्त जैनग्रंथोंमें लिखे हैं, वे सर्वज्ञप्रणीत न होकर पुराणकल्पित हैं। क्यों कि यह सुनिश्चित है कि, सर्वानुभूत प्रत्यक्ष प्रमाणसे सर्वज्ञका वचन कभी बाधित नहीं हो सकता। डा० हरमन जेकोबी जो कुछ समय पहले ‘ जैनदर्शनदिवाकर ’ की महती उपाधिसे विभूषित हो चुके हैं—जैनग्रन्थोक्त ज्योतिषके बारेमें अपनी क्या सम्मति देते हैं उसे जैनविद्वानोंको ‘प्राच्यदेशीय पवित्र ग्रंथमाला ’ द्वारा प्रकाशित जैनसूत्रोंकी प्रस्तावनाओंमें देखना चाहिए। जैनदर्शनके दिवाकर भी जिस साहित्यके विषयमें बहुत ही बुरी सम्मति देते हैं, वह साहित्य सर्वज्ञोक्त नहीं हो सकता। उसे सर्वज्ञकथित कह कर सर्वज्ञको कलंकित करना है। सर्वज्ञकथित वह स्याद्वाद सिद्धान्त है, जिसका कुछ कुछ दर्शन हमें भगवान् कुन्दकुन्द और समन्तभद्रके ग्रन्थोंमें मिलता है। और यों तो धृष्ट ग्रन्थकारोंने भद्रबाहुसंहिता जैसे ग्रन्थोंको भी सर्वज्ञके सिर पर मढ़ देनेमें कोई कसर नहीं रक्खी है। अब वह समय आ गया है कि साहित्यके प्रत्येक अंगकी और प्रत्येक विचारकी अच्छी तरहसे आलोचना होनी चाहिए। नहीं तो काचके टुकड़ोंके साथ बहुमूल्य मणि भी फेंक दिये जायँगे और जगत्की एक सर्वोत्तम विचारश्रेणी अयुक्तकी संगतिसे उपेक्षित हो जायगी।

हम कभी पाठकोंको, जैनग्रन्थोंहीके कुछ अवतरणोंसे यह दिखायँगे कि भरतखण्ड उतना ही है जितनेको कि हम आजकल हिन्दुस्थान या भारतवर्ष कहते हैं। पृथ्वीके यूरोप, अमेरिकादि दृश्यमान खण्डोंकी गणना भरतखण्डमें नहीं की जा सकती। विद्यमान गंगा सिन्धु नदियोंके सिवा और कोई महागंगा महासिन्धु नदियाँ नहीं हैं, जैसा कि ऊपर दिये गये स्वर्गीय बरैयाजीके लेखमें लिखा हुआ है। भारतीय समुद्र ही लवणसमुद्र है और हिमालय पर्वत ही हिमवान् है। इनके अतिरिक्त और कोई नदी, समुद्र पर्वतादि नहीं हैं। योजनोंके परिमाणमें और संख्याकी गणनामें भ्रम हो जानेसे ये सब अनाप-शनाप कल्पनायें पैदा हुई हैं। यह भ्रम पुरातनकालके विद्वानोंको भी विदित हो चुका था; परंतु किसी कारणवश वे इस भ्रमका निराकरण न कर पाये। पर अब इस बीसवीं शताब्दिके विज्ञान-

प्रस्थापित साम्राज्यमें यह भ्रम बहुत दिनोंतक नहीं टिक सकेगा।

हमारे बहुतसे पुराणप्रिय पण्डितवर्य्य और धर्ममूर्ति पत्रसम्पादकगण कहा तो करते हैं कि हमारे पास आधुनिक भूगोलसिद्धान्तोंके खण्डनार्थ और जैनभूगोलके मण्डनार्थ अनेकानेक अकाट्य युक्तियाँ मौजूद हैं; परंतु उन्हें प्रकट आजतक किसीने नहीं किया। हमारी उन महाशयोंसे सविनय प्रार्थना है कि वे अब कृपाकर अपनी उन युक्तियोंके भाण्डागारको जैनत्व और जनताके हितार्थ उदार भावसे खोल दें। पर युक्तियोंके नामसे अपने ऊटपटाँग विचारोंको प्रकट करनेकी कृपा न करें। उन्हें शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वर्तमानिक परिस्थितिकी सब ही अवस्थाओंका यथायोग्य विचार करना चाहिए। यह विषय उपेक्षा करनेके लायक नहीं है। जैनधर्मकी प्रमाणिकताका इसके ऊपर बड़ा भारी आधार रहा हुआ है। इस एक अवयवके निर्मूल सिद्ध होनेसे सारा ही विद्यमान जैनसाहित्य भयंकर स्थितिमें जा पड़ता है। उसकी ऐसी विचित्र रचना है कि उसमेंका एक भी विचार निकाल देनेसे समग्र शृंखला टूट जाती है। जैनतत्त्वज्ञानका एक दूसरे विचारके साथ 'व्याप्तिज्ञान' के समान अविनाभावि सम्बन्ध है। इसकी जो विशेषता है वह यही है और यही विशेषता आजतक इसे जीवित रख रही है।

पुस्तक-परिचय।

इस अंकमें अब तककी समालोचनार्थ आई हुई तमाम पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है। इनमेंसे बहुतसी पुस्तकें ऐसी हैं, जो हमारे पास वर्षोंसे रक्खी हुई हैं और जिनके विषयमें हम अपनी विस्तृत सम्मति देना चाहते थे; परन्तु समयके अभावसे ऐसा नहीं किया जा सका। इसके लिए हम लेखक और प्रकाशक महाशयोंसे क्षमा चाहते हैं।

१ **मोहिनी** अर्थात् बिगड़ेका सुधार और पतितका उद्धार। श्रीयुत दत्तात्रय भीमाजी रणदिवेके लिखे हुए 'रूपसुन्दरी' नामक मराठी उपन्यासके गुजराती अनुवादका हिन्दी अनुवाद। अनुवादक बाबू भैयालाल जैन। आकार डबल क्राउन १६ पेजी। पृष्ठसंख्या ९०। मूल्य आठ आने।

२ **सच्चा विश्वास**। (त्रिलोकमोहिनी मालाका चौथा पुष्प।) बंगालके सुप्रसिद्ध महात्मा केशवचन्द्रसेनके एक छोटेसे लेखका अनुवाद। अनुवादक बाबू श्यामसुन्दरलाल गुप्त। आकार डबल क्राऊन ३२ पेजी। पृष्ठसंख्या ४८। मूल्य दो आने।

३ **बालिका विनय**। (त्रिलोकमोहिनी मालाका तीसरा पुष्प।) सम्पादिका एक जैन महिला। आकार, पृष्ठसंख्या और मूल्य पूर्वपुस्तकके समान।

४ **रत्नकरण्डश्रावकाचार**, Or the House halder's Dharma। समन्तभद्रस्वामीकृत रत्नकरण्डका अंगरेजी अनुवाद, लगभग ४२ पेजके इन्ट्रोडक्शनके सहित। अनुवादक, बाबू चम्पतरायजी बैरिष्टर एट. ला. हरदोई। डबल क्राऊन सोलह पेजी आकारके १२० पृष्ठ। मूल्य बारह आने।

इन चारों पुस्तकोंके प्रकाशक श्रीयुत कुमारदेवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा हैं। इनकी छपाई, सफाई आदि सभी बातें दर्शनीय हैं।

५ The Study of Jainism. श्वेताम्बराचार्य आत्मानन्दजीके 'जैनतत्त्वादर्श' कर

अँगरेजी अनुवाद । पृष्ठसंख्या १०२ । मूल्य बारह आने ।

६ Saptbhangi naya (सप्तभंगीनय) । जैनहितैषीके भाग १३ अंक १ में प्रकाशित हुए लेखका अँगरेजी रूप । इसके प्रारंभमें श्रीयुत मुनि जिनविजयजीकी लिखी हुई एक छोटीसी भूमिका भी दी हुई है । पृष्ठ ३० । मूल्य छह आने ।

७ Lord Krishna's message । पृष्ठ-संख्या २४ । मूल्य चार आने ।

८ **व्याकरणबोध** । हिन्दी भाषाका सुगम और संक्षिप्त व्याकरण । पृष्ठसंख्या २८ । मूल्य ढाई आना ।

९ **साहित्य-संगीत-निरूपण** । पृष्ठसंख्या १३० । मूल्य दश आने ।

१० **उपनिषद्-रहस्य** । नौ मुख्य मुख्य उपनिषदोंके चुने हुए वाक्योंका संग्रह, उनका हिन्दी अनुवाद और अँगरेजी अर्थ । आकार डिमाई अठपेजी । पृष्ठसंख्या ४८ । मूल्य ढाई आने ।

उपर्युक्त छहों पुस्तकोंके लेखक धौलपुर स्टेटके सेशनजज श्रीयुत लाला कन्नोमलजी एम. ए. और प्रकाशक ‘ आत्मानन्द जैनपुस्तकप्रचारक मण्डल, रोशन मोहल्ला, आगरा ’ हैं ।

११ **अहिंसा परमोधर्मः** । इसमें महात्मा गाँधीका लिखा हुआ ‘ अहिंसा ’ और किसी अहिंसिस्ट ’ नामधारी महाशयका ‘ जैन अहिंसा ’, इस तरह दो अँगरेजी लेख हैं । ये दोनों लेख सुप्रसिद्ध अँगरेजी पत्र ‘ माडर्नरिव्यू ’ में प्रकाशित हुए थे । डबल क्राउन ३२ पेजी साइजके ३२ पृष्ठ । मूल्य एक आना । भारतजैनमहामण्डलके जीवदयाविभागके मंत्री बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. लखनऊ इसके प्रकाशक हैं ।

१२ **जैनसाहित्यसम्मेलनका कार्य विवरण** । सन् १९१४ के मार्च महीनेमें डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणके सभापतित्वमें जोधपुरमें जो जैनसाहित्यसम्मेलन हुआ था, उसका यह कार्यविवरण अभी थोड़े ही दिन पहले प्रकाशित हुआ है । इसके एक भागमें सम्मेलनकी रिपोर्ट है और दूसरे भागमें सम्मेलनमें उपस्थित हुए गुजराती, हिन्दी और अँगरेजी लेखोंका संग्रह है । आकार रायल अठपेजी । पृष्ठसंख्या लगभग २६० । मूल्य एक रुपया ।

१३ **देहली शास्त्रार्थ** । (ईश्वरकर्तृत्व-तीर्थंकरसर्वज्ञत्वखण्डनमण्डनविषयक ।) न्यायालङ्कार पं० मक्खनलाल शास्त्री (जैन) और पं० नरसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य (आर्यसमाजी) के शास्त्रार्थका विवरण । पृष्ठसंख्या ६८ । मूल्य चार आने । प्रकाशक, मंत्री जैनमित्रमण्डल, धरमपुरा देहली ।

१४ **सोऽहं तत्त्व** । श्रीयुत ‘ सोहं स्वामी ’ की बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद । अनुवादक और प्रकाशक पं० ज्वालादत्त शर्मा, किसरोल, मुरादाबाद । पृष्ठसंख्या १०४ । मूल्य आठ आने ।

१५ **विवाहप्रबन्ध** । लेखक, श्रीयुत मुकुन्दीलाल, प्रकाशक, गढ़वाली प्रेस, देहरादून । डिमाई अठपेजी साइजके ३२ पृष्ठ । मूल्य तीन आने ।

१६ **शाही लकड़हारा** । महात्मा शिवव्रतलाल वर्मा एम. ए. की उर्दू पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक, बाबू गौरीशंकरलाल अख्तर । प्रकाशक, बाबू दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए., हिन्दीसाहित्यभण्डार, लखनऊ । आकार डबल क्राउन सोलहपेजी । पृष्ठसंख्या २५२ । मूल्य एक रुपया ।

१७ **सदाचार-सोपान** । प्रतिभा आदि उपन्यासोंके लेखक बाबू अविनाशचन्द्र दास एम. ए. बी. एल. की सुकथा नामक बंगला

पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक और प्रकाशक, दशरथ बलवन्त जादव, देवरी (सागर,) सी. पी. । पृष्ठसंख्या ४४, मूल्य चार आने ।

१८ महादेव गोविन्द रानडे । लेखक, श्रीयुत भारतीय । प्रकाशक, दीक्षित और द्विवेदी, दारागंज प्रयाग । पृष्ठसंख्या २०० । मूल्य दश आने ।

१९ जीवरक्षादर्पण । लेखक और प्रकाशक, लाला पारसदासजी खजांची, देहली । पृष्ठसंख्या डिमाई अठपेजी साइजकी ८० । मूल्य चार आने ।

२० दिव्य जीवन । डा. स्विट् मार्सडनकी एक अँगरेजी पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक, बाबू सुखसम्पत्तिराय भण्डारी । प्रकाशक, जीतमल लुणिया, इन्दौर । पृष्ठसंख्या १३६ । मूल्य तेरह आने।

२१ आत्मावबोध । राजशेखरसूरिके संस्कृत ग्रन्थके पं० लालनकत गुजराती अनुवाद और विस्तृत विवेचनका हिन्दी अनुवाद । अनुवादक, पं० उदयलालजी काशलीवाल । प्रकाशक, मुकुन्ददास मोतीलाल मुणोत और आनन्दराम केसरचन्द बाँठिया, पनवेल (बम्बईके नजदीक) पृष्ठसंख्या १४८ । मूल्य आत्मलीनता ।

२२ सदाचारिणी । सामाजिक उपन्यास । लेखिका ' जननी '–सम्पादिका श्रीमती कुमुद-बाला देवी । प्रकाशक, हरिश्चन्द्र भट्ट, जननी आफिस, तनसुखलाइन, शिवठाकुर गली । डिमाई अठपेजी आकारके ८० पृष्ट । मूल्य दश आने ।

२३ महाकवि गालिब और उनका काव्य । **२४ उस्ताद जौक और उनका काव्य** । उर्दूके प्रसिद्ध कवियोंका और उनकी रचनाका परिचय । दोनों पुस्तकोंके लेखक, पं० ज्वालादत्त शर्मा और प्रकाशक, हरिदास एण्ड कम्पनी नं० २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता । मूल्य छह छह आने ।

सम्पादकीय कार्यसे एक वर्षकी छुट्टी ।

अवकाशकी कमी, लगातार अत्यधिक परिश्रमसे उत्पन्न हुई शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता, आदि अनेक कारणोंसे मैं जैनहितैषीके कार्यसे एक वर्षके लिए छुट्टी लेता हूँ । मैं चाहता हूँ कि मेरे काम न करने पर भी जैनहितैषी जारी रहे; इसके लिए मैं प्रयत्न भी कर रहा हूँ और आशा है कि मेरे मित्रोंमेंसे एक सज्जन इसके सम्पादन कार्यको स्वीकार कर लेंगे । उनसे पत्रव्यवहार हो रहा है । यदि उन्होंने स्वीकार कर लिया तो इसकी सूचना यथासमय प्रकाशित कर दी जायगी । इस नये प्रबन्धमें कुछ विलम्ब होगा और इस कारण अब हितैषीका नया वर्ष चैत्र सुदी १ से शुरू किया जायगा ।

सम्पादक ।

नई पुस्तकें नीचे लिखी पुस्तकें हालही बिक्रीके लिए आई हैं । इन्हें मँगाइए और पढ़िए:—

१ लड़ाईकी लहर, ठाकुर गदाधरसिंह कृत, मूल्य ।), **संसारसुखसाधन**, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीकृत, मूल्य ।-), **कथा-कहानी** बाबू नारायणप्रसाद बी. ए. कृत, मूल्य ।), **महाराष्ट्र केसरी शिवाजी**, पं० ताराचन्द अग्निहोत्री बी. ए. कृत, मू० ॥=), **भारतीय राष्ट्रनिर्माता**, लाल, बाल, पाल, बसेंट, गोखले आदि देशभक्तोंके जीवनचरित, मूल्य दश आने । **रा. ब. जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे**, लेखक बाबू रामचन्द्र वर्मा । मू० ॥)

मैनेजर, **हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग पो० गिरगाव, बम्बई ।

हितैषी–औषधालय–इटावहकी

पवित्र-सस्ती-औषधियाँ।

नमक सुलेमानी।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हाजमेकी अक्सीर दवा। की० ॥) तीन सी० १।≈)

धातु संजीवन।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य पैदा होकर शरीर हृष्ट–पुष्ट होजाता है। की० १)

प्रदरान्तक–चूर्ण।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया दूर कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है की० १)

नयनामृत–सुरमा।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाता और तुरावट पैदा करता है। की० १)

दन्त–कुसुमाकर।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दांतोंकी चमक बढ़ाता और मजबूत करता है। की० ।)

दद्रु–दमन।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके दादाको तगादा कर भगाती है। की० ।)

केश-विहार–तैल।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और मस्तकके रोगोंको दूर करता है। की० ॥)

नारायण–तैल।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गठिया, पक्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा है। की० १)

दवा सफेद दागोंकी।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते हैं वह दूर हो जाते हैं। की० १)

श्वास–कुठार।

यह स्वास दमें की शर्तिया दवा है। की० १)

गोली दस्तबंदकी।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी आदिको शीघ्र दूर करती है। की० ॥)

दवा खांसीकी।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर करने वाली आजमूदा दवा है। की० ॥)

अर्क कपूर।

हैजेकी अक्सीर दवा। की० ।)

चंद्रकला।

यह गोरे व खूबसूरतीकी दवा है। की० ॥)

नैन-सुधा-अञ्जन।

इससे आँखका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि सब अच्छे होते हैं। की० ॥)

दवा पेटके दर्दकी।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है। की० ॥)

ताम्बूल रंजन।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला। की० ।)

शिरदर्द-हर तैल। की० ।)

कर्ण-रोग-हर तैल। की० ।)

खुजली–नाशक तैल। की० ।)

बाल उड़ानेका साबुन। की० ।)

कोकिल–कण्ठ–वटिका। की० ।)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

हमारी ग्रन्थमालाकी नई पुस्तकें ।

ताराबाई । यह आपके पूर्वपरिचित स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके बंगला नाटकका अनुवाद है। अभी तक आपने इनके जितने नाटक पढ़े हैं, वे सब गद्यमें थे; पर यह पद्यमें है । अनुवाद भी खड़ी बोलीके तुकान्तहीन पद्योंमें कराया गया है । अनुवादक हैं—सुकवि पं० रूपनारायण पाण्डेय । हिन्दीमें यह बिलकुल नई चीज है । ऐतिहासिक नाटक है । यह बढ़िया 'इमिटेशन आर्ट' कागज पर छपाया गया है । मूल्य एक रुपया छह आने । सादेका १)

देश-दर्शन । इसके तैयार होनेकी सूचना वर्षोंसे निकल रही है । बड़ी मुश्किलसे यह अब तैयार हुआ है । इसके लेखक ठाकुर शिवनन्दनसिहजी बी. ए. हैं अँगरेजीके पचासों ग्रन्थोंके आधारसे यह लिखा गय है । इसमें देशकी भीतरी दशाओंका आपको दर्शन होगा । यहाँकी घोर दरिद्रताका, आयुकी भयंकर घटीका, मृत्युसंख्याकी बढ़ती हुई भीषणताका, अल्पजीवी बच्चोंकी अधिक जन्मसंख्याका और इनके साथ बढ़े हुए व्यभिचारका, नशेबाजीका, चरित्रहीनताका वर्णन पढ़कर आप अवाक् हो जायँगे । शिक्षाकी कमी, व्यापारकी दुर्दशा, विदेशियोंकी सत्ता, किसानोंकी बुरी हालत, बालविवाह, वृद्धविवाह, अयोग्यविवाह, विवाहका इतिहास, उत्तम संतान उत्पन्न करनेके सिद्धान्त, सन्तान कम उत्पन्न करनेकी आवश्यकता आदि और भी अनेक विषयोंके सम्बन्धमें आपको इसमें सैकड़ों नई बातें मालूम होंगी । कई चित्र और नकशे भी इसमें दिये गये हैं । पृष्ठसंख्या पौने पाँचसौके लगभग । मूल्य तीन रुपया ।

हृदयकी परख । जो लोग इस बातकी शिकायत करते हैं, कि हिन्दीमें स्वतंत्र उपन्यास नहीं है उन्हें इस भावपूर्ण उपन्यासको पढ़कर बहुत सन्तोष होगा। इसके लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री हैं । इस पुस्तकमें हमने एक नामी चित्रकारसे पाँच नवीन चित्र बनवाकर छपवाये हैं, जिससे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है । मूल्य एक रुपया दो आने । सादीका ॥।≈)

नवनिधि । इस ग्रन्थको उर्दूके प्रसिद्ध गल्पलेखक श्रीयुत प्रेमचदजीने स्वयं अपनी कलमसे हिन्दीमें लिखा है । इसमें एकसे एक बढ़कर सुन्दर और भावपूर्ण ९ गल्पें हैं । इनके जोड़की गल्पें आपने शायद ही कभी पढ़ी हों । मूल्य एक रुपया दो आने । सादीका ॥।≈)

नूरजहाँ । स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके प्रसिद्ध नाटकका अनुवाद । इसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । शाहजहाँ और नूरजहाँ उनके सर्वश्रेष्ठ नाटक गिने जाते हैं । मूल्य एक रुपया दो आने । राजसंस्करण १॥)

राष्ट्रीय ग्रन्थ ।

स्वराज्य । गुरुकुल काँगड़ीके अर्थशास्त्रके प्रोफेसर श्रीयुत बालकृष्ण एम. ए. इसके लेखक हैं । इस विषयका अपने ढंगका यह निराला ही ग्रन्थ है । पृष्ठसंख्या ३०० । मूल्य सवा रुपया ।

अर्थशास्त्र । अर्थात् धनकी उत्पत्ति तथा वृद्धि । लेखक, उपर्युक्त प्रो० बालकृष्ण एम. ए. पृष्ठसंख्या ५५० । मू० १॥) ।

पार्लमेण्ट । लेखक, श्रीयुत बाबू सुपार्श्वदास गुप्त बी. ए. । हिन्दीमें यह इस विषयकी सबसे पहली पुस्तक है । जिस ब्रिटिश पार्लमेण्टके शासनमें हम रहते हैं उसका शुरूसे लेकर अब तकका इतिहास, उसका क्रमविकाश, उसकी शासनपद्धति और उसके गुणदोष आदि बातोंका खूब विस्तारके साथ इसमें निरूपण किया गया है । पृष्ठसंख्या २७५ । मूल्य एक रुपया दो आने । सादीका चौदह आने ।

महादेव गोविंद रानडे । लेखक, श्रीयुत भारतीय । बम्बई हाईकोर्टके भूतपूर्व जज, प्रसिद्ध सुधारक और देशभक्त महात्माका जीवन-चरित । यह अनेक ग्रन्थोंके आधारसे बहुत अच्छे ढंगसे लिखा गया है । पृष्ठसंख्या २०० । मूल्य ॥≈)

देवी जौन अर्थात् स्वतंत्रताकी मूर्ति । अपने जीवनका बलि देकर फ्रान्सको पराधीनतासे मुक्त करनेवाली 'जौन आफ आर्क' नामक प्रसिद्ध वीरांगनाका देशभक्तिपूर्ण अपूर्व जीवनचरित ।

लेखिका, श्रीमती बालाजी। पृष्ठसंख्या १०० से ऊपर। मूल्य आठ आने।

स्वराज्यकी योग्यता। 'माडर्न रिव्यू'के सम्पादक श्रीयुत बाबू रामानन्द चट्टोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'टूवर्ड्स होमरूल' का हिन्दी अनुवाद। (प्रथम भाग।) इस विषयका यह अद्वितीय ग्रन्थ है। बड़ी ही अकाट्य युक्तियोंसे 'भारत स्वराज्यके योग्य नहीं है' इस प्रवादका खण्डन किया गया है। प्रत्येक देशभक्तके पढ़नेकी चीज है। पृष्ठसंख्या २२०। मूल्य सवा रुपया।

स्वराज्यकी पात्रता। मूल्य पाँच आने।

राष्ट्रीय शिक्षा। मि० अरण्डेलके व्याख्यानका अनुवाद। मू०।)

स्वराज्यकी पात्रताके प्रमाण और मेरे कार्य। मूल्य –)॥

देवी वसन्तका संदेशा	–)॥
राष्ट्रनिर्माण	–)॥
स्थानिक स्वराज्य	–)॥
धर्म और राजनीति	–)॥
स्वराज्य क्यों चाहिए	–)॥
स्वराज्यविचार	≶)
हिन्दुस्थानकी माँग	–)
राष्ट्रीय स्वराज्य	–)॥

हमारा भीषण ह्रास, लेखक-पं० मन्नन द्विवेदी बी. ए. मू० ≶)

अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थ।

सदाचार-सोपान। प्रतिभा, शान्तिकुटीर आदिके लेखक, श्रीयुत बाबू अविनाशचन्द्रदास एम. ए. बी.एल. की बंगला पुस्तकका अनुवाद। बहुत ही अच्छी शिक्षाप्रद पुस्तक है। मूल्य।)

राजा और रानी। इसमें सम्राट् पंचम जार्ज और महाराणी मेरीके चरित्रसे मिलनेवाली शिक्षाओंपर विचार किया गया है। विद्यार्थियोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। यह गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत अमृतलाल पढ़ियारकी पुस्तकका अनुवाद है। मूल्य छह आने।

शाही लकड़हारा। उर्दूके सुप्रसिद्ध लेखक लाला शिवव्रतलाल वर्मा एम. ए. की दिलचस्प पुस्तकका हिन्दी अनुवाद। मूल्य एक रुपया।

सुख और सफलताके मूल सिद्धान्त। सुप्रसिद्ध अँगरेजी लेखक जेम्स एलनकी 'फोन्डेशन स्टोन्स टू हेप्पीनेस एण्ड सक्सेस' नामक पुस्तकका अनुवाद। मूल्य ढाई आना।

सुखकी प्राप्तिका मार्ग। जेम्स एलनकी 'पाथ आफ प्रोसपेरिटी' का अनुवाद। अनुवादक, बाबू दयाचन्द गोयलीय बी. ए. पृष्ठसंख्या ८०। मूल्य ।≈)

किशोरावस्था। लेखक, श्रीयुत गोपाल शरणसिंह बी. ए.। जिन्होंने युवावस्थामें प्रवेश किया है, उन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए। बड़ी अच्छी पुस्तक है। मूल्य॥≈)

ज्योतिष शास्त्र। लेखक, श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद खेतान एम. ए. कृत। अनेक चित्रोंसे युक्त। मूल्य दश आने।

कर्मक्षेत्र। श्रीशशिभूषणसेनकृत बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद। इसमें निरुद्यमी, उत्साहहीन और हतभाग्य भारतवासियोंको उत्साहित करके कर्मवीर बनानेका प्रयत्न किया गया है। भारतवर्षके अनेक महापुरुषोंके चरित्र देकर इन बातोंको पुष्ट किया है। पृष्ठसंख्या २०० । मू० सादीका चौदह आने। साजिल्दक १≈)

मिलनेका पता—
व्यवस्थापक—हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

(इस अंकके निकलनेकी ता० २०–१–१९१८ ई०)